

भारतभूमि और उसके निवासी

अथवा

भारतीय इतिहास का भौगोलिक आधार

लेखक

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

मुख्य कार्यकर्ता, गुरुकुल काशी,

जोश नवोदय संस्थान, काशी

विश्व हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी ।

द्वितीय परिष्कृत संस्करण

द्वितीय भारतीय ऑरियंटल कॉन्फ्रेंस के सभापति

रायबहादुर श्री हीरालाल

लिखित प्रस्तावना सहित ।

अद्वितीय
२१

स्वाश्रम, आगरा

सं० १९८३ वि०

अद्वितीय
२१

प्रकाशक
जयचन्द्र विद्यालंकार
कमालिया, पंजाब ।

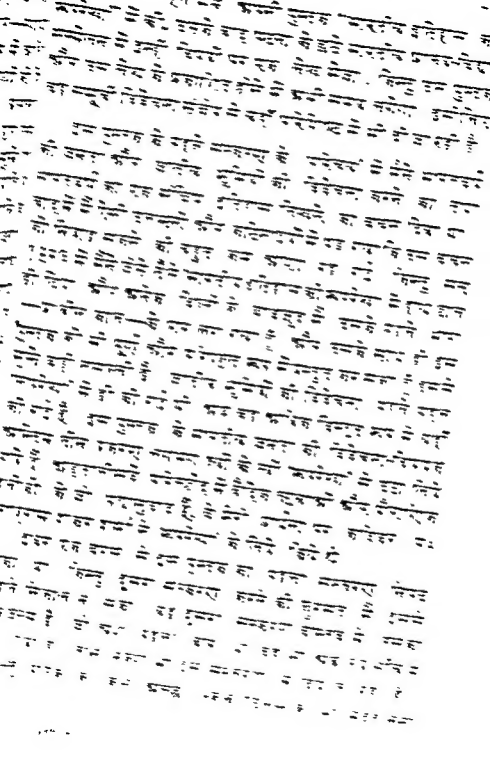
प्रिण्टर
पं० चन्द्रहंस शर्मा विशारद
रत्नाश्रम कानून ऑफिस प्रिंटिंग प्रेस
आगरा ।

परिचय

“भारतीय इतिहास का भौगोलिक आधार” पहले पहल सन् १९८१ वि० (१९२५ ई०) में लिखा गया, और १९८२ के शुरू में दुनिया के मामले आया था। उस का परिचय देते हुए मैंने तब कहा था कि वह भारतीय इतिहास के भूमिका-रूप भारतवर्ष के वर्णन और विवेचन के दो खण्डों में से एक है। प्रस्तुत पुस्तक के केवल पहले खण्ड का विषय उस में आया था। दूसरा खण्ड तब न लिखा गया था। अब मैं इसे “भारतभूमि और उस के निवासी अथवा भारतीय इतिहास की परिस्थिति” कहना पसन्द करता, पर इस का पुराना नाम प्रसिद्ध हो चुका है—यह इसी से प्रकट है कि ऐसी पुस्तक का हिन्दी में दूसरा संस्करण हो रहा है—, और इसीलिए उस नाम को भी बनाये रखना जरूरी है।

भौगोलिक विवेचना की तरफ अभी तक हमारे देश में बहुत कम ध्यान दिया जाता है। इतिहास की अनेक प्रवृत्तियों को भौगोलिक परिस्थिति ने किस प्रकार निश्चित किया है इस का अनुभव यदि यह पुस्तक करा सके तो मेरा जतन एक बड़े अंश में सफल हो जायगा।

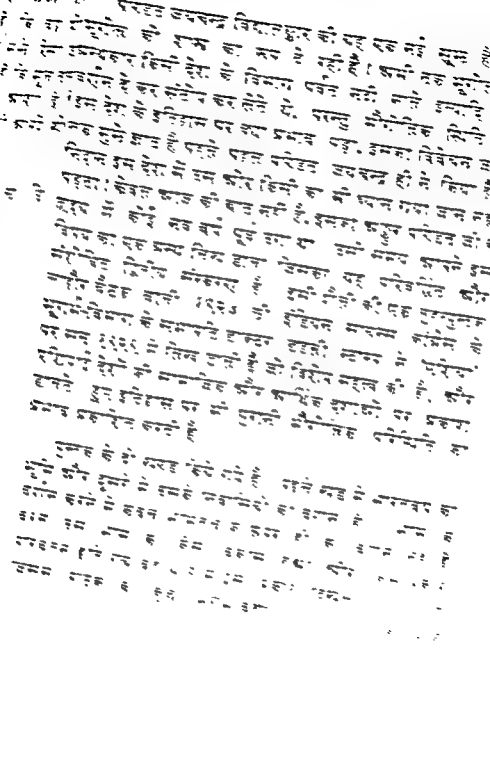
भारतवर्ष की जातीय भूमियों को पहचानने का महत्त्व पहले पहल मैंने सन् १९७८ (सन् १९२१ ई०) के स्मरणोपमाल दिखलाया था। उनकी पहचान जहाँ एक तरफ भारतीय इतिहास और समाजशास्त्र के अध्ययन की बुनियाद है वहाँ भारतीय राष्ट्र के भावा जीवन की भी वही इकाइयाँ हैं। इन हास-समाजशास्त्र के विद्यार्थी के लिए उन का जितना महत्त्व



होगी। मैंने सब जगह भारत सरकार की "इण्डिया ऐन
लेडजेमेन्ट कम्प्रीज" (भारत और पड़ोसी देश) परम्परा के अधीन
सबसे एशिया मीरीज (दक्खिन एशिया परम्परा) के नये संस्करण
के नक्शों में काम लिया है। कोयुन्युं कडे, ममेडके, अकमका तोहिये
द्वारा प्रकाशित 'मध्य एशिया की पेट्रोलम' की मैंने बहुत प्रशंसा
सुनी है, किन्तु अनेक त्रुटि करने पर भी मैं आज तक उसे नहीं
पा नहीं सका। तीन बार हुए मेजर वामनदास बसु ने मुझ से
बताया कि उन्होंने अङ्गरेजी में भारतवर्ष का एक व्यावसायिक
भूगोल (इन्डस्ट्रियल ज्योग्राफी और इण्डिया) लिखा है। तब
उनके छपने की खान थी पर अब तक मैंने उसे छपा नहीं देखा।
यदि मेजर बसु की अकास मस्यु न हो जाती तो शायद
मैं उनकी दम्भलिखित प्रति से भी लाभ उठा पाता। म
होमस इण्डिक के इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डिया रिटैनिडा (इतिहास विभाग)
१३ नें संस्करण में प्रकाशित संस्करणों में भी मैंने
सहायता ली है। किन्तु जहाँ उनका भारत और पड़ोसी देश
नक्शों में अलग पाया नहीं उनका बाल मैंने आकार नहीं की
और तीन स्थलों का उपयोग किया गया है, उनका निर्देश
जगह जगह कर दिया गया है। किन्तु एनिसामिक पटनाओं
हल्के करने समय केवल नहीं के लिए प्रमाण निर्देश दिए
गया है जो अविज्ञान या सर्वेक्षण नहीं है।

बहुत बह देना जरूरी है कि मेरा भारतीय भूमियों विषय
अध्ययन अभी तक पूर्ण नहीं हो पाया। विशेष कर कुछ प्रदेशों
को 'अर्द्ध' करने देखा जा रहा है। अत्यन्त वर्गिक मानकों
द्वारा मैं अपने बहुत से विचारों को पूर्ण नहीं कर सका।

अब 'अन अनर क्लब' और 'मिर्च' ने मुझे इस पुस्तक
के लिए एक अलग प्रकाशक का सम्पादन करने के लिए एक



(Anthropometry) पर अनेक विद्वान् विश्वास करने को भिन्नकते हैं। खोपड़े की लम्बाई चौड़ाई द्वारा अथवा नाक की नाप आदि से परख करना कि अमुक पुरुष किसी विशेष जाति या वर्ग का है विरोधी पक्ष को हान्यजनक जान पड़ता है। उनके लेखे तकिया या दाई द्वारा मननानो विकृतियाँ पैदा हो सकती हैं। खोपड़ी या नाक की आकृति जिस प्रकार दाई बना कर या ठाकर कर देवे उसी प्रकार की हो जाती है, और सिर का आकार उसके नीचे तकिया रखने से भी बदल जाता है। तिस पर भी एक वेषभूषा और रंग के भिन्नजातीय व्यक्तियों को देखते ही पहचान की जा सकती है, यथा यदि श्यामल रंग के कोट-पतलून-हैट-बूट-धारी मराठा और बंगाली किसी के सामने खड़े कर दिये जाय तो वह उत्तमांग की आकृति देखते ही बतला देगा कि अमुक व्यक्ति मराठा और दूसरा बंगाली है। चेहरों की बनावट में कुछ ऐसा भेद अवश्य लक्ष्य पड़ता है जो उनके पृथक् वर्गों में घाँट देता है। जनविज्ञान और हमारे अंग-मानुषमिति, नानिकामान, कपालमिति इत्यादि अभी अज्ञात अवस्था में हैं, जिनकी कालान्तर में वृद्धि होने की आशा है। वर्तमान अवस्था में भाषाओं द्वारा एकजातियता को बहुत अधिक दृढ़तापूर्वक की जा सकती है। मुख्यतः इन्हीं के कारण पर ग्रंथकर्ता ने वर्तमान भारत को पूरे एक बड़े प्रदेश में बाँटने का प्रयोग किया है; वह इस प्रकार है—

- हिन्दी खण्ड में (१) अन्तर्वेद अर्थान् संयुक्तप्रान्त आदि
 () राजस्थान अर्थान् राजपूतप्रान्त
 (३) वेदिकोशल अर्थान् मध्य प्रदेश के मध्य भारत का बहुत का
 (४) बिहार
 (५) नेपाल

- पूरब स्पष्ट में (६) भूटान तथा आसामोत्तर प्रदेश
(७) आसाम
(८) बंगाल
(९) उड़ीसा
- दक्षिण स्पष्ट में (१०) आन्ध्र या तेलंगण
(११) तामिलनाडु अर्थात् मद्रास का दक्षिणी भाग
(१२) सिहल या श्रीलोक
(१३) कर्ल अर्थात् मद्रास प्रां
(१४) कर्णाटक अर्थात् कन्नड़ भा
का क्षेत्र
(१५) महाराष्ट्र अर्थात् मध्य प्रदेश
का बहुत सा भाग
- पश्चिम स्पष्ट में (१६) गुजरात
(१७) सिन्ध या सिन्ध-कमान
- उत्तरपश्चिम स्पष्ट में (१८) अफगानस्थान
(१९) कश्मीर-कश्मीर
(२०) पंजाब ।

उपर लिखे कुछ नामों की व्यवस्था पर संशय तो कुछ
शुद्ध प्रकट की है, और १० २०० के दूसरे फुटनोट में लिखा है
कि 'यदि समूचे पूर्वी दिनों क्षेत्र को एक प्रांत मानना अभीष्ट
है तो इसका नाम कोरल बहुत ही मार्थक होगा, क्योंकि
अपने प्रांतों के नाम कोरल है और छत्तीसगढ़ दक्षिण कोरल
रत्न के बीच कोरलबी या कम-भूमि (प्रवाग प्रदेश) और काठ
का (उत्तर) में भी उत्तर काठ की ही वासी है इस देश
में उत्तर-पश्चिम का प्रदेश का बहुत बड़ा भाग इस प्रकार नाम प्राप्त होगा-

अंतर्वेद, बुंदेलखंड, कोशल । और कोशल में चार प्रदेश होंगे- उत्तर कोशल, कौशान्धी, कारुष, दक्षिण कोशल । यह प्रश्न आलोचना के लिये छोड़ा जाता है । इन शंकाओं का केन्द्र चेदि-कोशल नाम है । जहाँ का मैं निवासी हूँ, इसलिये इस विषय पर मुझे अपनी राय प्रकट करना अभीष्ट जान पड़ता है । जिन कारणों से प्रेरित हो कर पंडित जी ने चेदि-कोशल नाम चुना है वे पृ० २०५-२०७ में दिये हैं । मेरी समझ में वे काफी जान पड़ते हैं । यथार्थ में महाकोशल का विस्तार प्राचीन काल में निदान वर्षा नदी तक था और उसमें वर्तमान चार मराठी जिले अर्थात् भंडारा, नागपुर, वर्धा, और चांदा भी शामिल थे । चोनी यात्रा युवनचक्रांग के भ्रमण के समय महाकोशल की राजधानी चांदा ही जिले में भद्रावती वर्तमान भांडक में थी । पश्चान् वह रायपुर जिले के भीपुर वर्तमान सिरपुर को अन्तरित कर दी गई थी । हहय अथवा कलचुरि नरेशों का राज्य चेदि नाम से चलता था और आसपास की जो भूमि राज्य में आती जाती थी वह चेदि में ममाती जाती थी जैसा कि वर्तमान समय में ब्रिटिश भारत में हो रहा है । महाकोशल चेदि राज्य का एक भाग था जिसमें कलचुरि वंश के माण्डलिक त्रिपुरी-नरेश के अधीन राज्य करते थे । न्वयं त्रिपुरी (वर्तमान तेवर) जो मेरे एक ग्राम से पाँच मील की दूरी पर है, डाहल मण्डल के अन्तर्गत थी, जिसका विस्तार मलकापुरम् के शिलालेख में यों दिया है -

अस्ति विश्वम्भरासारः कमलाकुलमन्दिरम् ।

भागीरथीतन्मर्मदयोर्मध्यं दहलमण्डलम् ॥

इसलिये जिस प्रांत का नाम पंडितजी ने चेदि कोशल रखा है उसके लिये यथार्थ में केवल चेदि काफी था परन्तु यह नाम बहुत काल से विस्मृत हो चुका है । इसलिये उसमें कोशल जोड़ देने से कुछ स्पष्टता आ जाती है । त्रिपुरी का राज्य ज्ञोष्ट्रीय ।

था या १३ वीं शताब्दी में मिट जाने पर भी महा या दक्षिण कोशल का राज्य अठारहवीं सदी के मध्य तक चلتा गया, पर, उसका क्षेत्र संकुचित हो कर वर्तमान छत्तीसगढ़ के बीच ही रह गया। इधर उधर के अंग कट कर अन्य प्रान्तों में सम्मिलित हो गये इसीलिये महाकोशल का दायरा छत्तीसगढ़ के भीतर गिना जा सकता है। आज ही से मराठी जिलों में भिन्नता दिखाने के लिये मध्य प्रदेश के इन्दौर जिलों का नाम महाकोशल प्रचलित किया गया है। यह पंक्तिजों के मनोनीन नाम को पुष्ट करता है इसके स्थिति होने से अन्य नामों के बदलने की आवश्यकता पड़ती है।

महाकोशल की चर्चा मुझे यहाँ एक दूसरी समस्या का स्मरण करती है जिसके विषय में हम पुनः हमें अनेक शंकाएँ उत्पन्न की गई हैं, यह समस्या है 'मौरास्य' की स्थिति की। प्रथम दृष्टि में जो प्राचीन भूगोल विषयक नई चर्चा प्रसिद्ध हुई है, उनमें १० ३१६, ३१७ पर 'मौरास्य' का उल्लेख है। यह बताया गया है कि यह नाम राजतरंगिणी में ललितादि के चर-दिग्विजय के देशों में और वाग्धायन के काममूत्र में मिलता है। काममूत्र के टीकाकार ने 'वसवन्तदेशान्परिषां मौरास्यम्' लिखा है, इससे हमें कल्पना की गई है कि मौरा मूटान या रोजेनित्त (प्रचलित दार्जिलिंग) के परिषम हो जादिये, क्योंकि निम्नो भाषा में मूटान को दुग्गुल कहते हैं जिसका अर्थ होता है विजय का देश और रोजेनित्त का भी होता है वसवन्त। इन स्थानों से बहुराज्य विचार की प्रथा कागज अनुमान किया गया है कि उस ओर का आधुनिक प्रदेश टीह मौरास्य होगा। परन्तु राजतरंगिणी के मौरा का निर्देशन नहीं किया गया। कहा जाता है कि ललितादि जिस क्षेत्र में अनेक देश मिलता गया उसी क्षेत्र में राजतरंगि

में इनका नाम दर्ज किया गया है, यथा कान्यकुब्ज को जीत कर उसकी सेना कलिंग की घड़ी, वहाँ से कर्णाट, कोंकण, द्वारका, अवन्ति, कान्योज, तुःग्यार, भौट्ट, दरद और प्राग्ज्योतिष को सर करती हुई चालुकाम्बुधि को पहुँची। तन्परचान् स्त्रीराज्य मिला, तद्योगान्विगलद्वैर्यान् स्त्रीराज्ये स्त्रोजनोऽकरोत्'। स्त्रीराज्य के परचात् उत्तर कुद मिला जिससे जान पड़ता है कि ये दोनों देश एक दूसरे से सटे हुए थे। सर औरल स्टाइन ये दोनों नाम कल्पित समझते हैं, परन्तु ग्रन्थकार के अनुमान को चीनी यात्री युवनच्वांग और बृहत्संहिता से कुछ सहारा अवश्य मिलता है। युवन च्वांग ने पो-लो-हि-मो-पु-लो (ग्रहपुर) देश का विषय किया है जिसे वह पूर्वीय स्त्रीराज्य कहता है। उसका विस्तार उसने पूर्व में तिब्बत तक बतलाया है। बृहत्संहिता में स्त्रीराज्य की गणना परिचमोत्तरीय देशों में की गई है।

परन्तु बहुपतिक प्रथा का प्रचार दूर दूर के अनेक देशों में था, इसलिये स्त्रीराज्य की स्थिति किसी किसी ने भारत के बिलकुल दक्षिण में की है। एक (मि. लांगन) ने तोलका द्वीप के मिनिकोइ टापू को स्त्रीराज्य ठहराया है। मिनिकोइ मलाबार के निकट है, जहाँ बहुपतिक प्रथा का अब भी प्रचार है। लांगन का कहना है कि मिनिकोइ द्वीप में स्त्रियों का बहुलता अब भी है। यदि इसी बात पर सयदारमदार हो तो अजरवेजान की जस्सैअन और ओस्सोशियन जातियों के प्रान्त को असल स्त्रीराज्य कहना चाहिये। ये दोनों काला समुद्र और कारिपयन के बीच में हैं। यहाँ की स्त्रियाँ आज भी पूर्ण रूप से स्वत्व जमाये हुए हैं। युवन च्वांग ने लिखा है कि पूर्वी स्त्रीराज्य में देशरक्षा और खेती के सिवाय पुरुषों से कुछ काम लिया ही नहीं जाता था। अजरवेजान के स्त्रीराज्यों में तो पुरुषों में कोई भी काम नहीं लिया जाना स्त्रियों मध्य कुद्ध करती हैं। अगर कोई पुरुष निठन्लेपन में उक्ता कर कुछ काम कर बैठे तो

ऐसे का पश्चिमी भाग मध्य निचलेवर्ती यवननाल दिले के खो-
राध्य कहलाता रहा हो और पूर्वी भाग मूर्धिका तो कानमूर्ध के
टीकाकार का कथन बिलकुल ठीक जन जाता है, क्योंकि चौड़ा
दिले के बीचोबीच बैरागड़ है जिसका प्राचीन नाम बरु था।
इसके सिवाय यवननाल दिले में अब भी एक जाति पाई जाती
है जिसने दधुचलिक प्रथा का विरोध प्रचार था। इस जाति का
नाम कोलान है। जिसकी भाषा से जान पड़ता है कि ये लोग
द्राविड़ों से पहले के निवासी हैं। उनके आसपास द्राविड़ी
गोंड बहुत रहते हैं। परन्तु उनकी वैवाहिक रीति कोलानों
की रीति से बिलकुल विरुद्ध है। गोंडों में लड़की को
पकड़ ला कर विवाह कर लेने की प्रथा थी, कोलानों में लड़की
लड़के को पकड़ लाती थी और उससे विवाह करती थी। स्त्रियों
का स्वत्व पुरुषों से बढ़ा था। इमोलिये वे पुरुषों से बलात्कार
कर सकती थीं। ऐसे स्थल में स्त्रियों का राज्य होना बिलकुल
स्वाभाविक जान पड़ता है।

इस प्रकार असल स्त्रीराज्य की स्थिति की संभावना मध्य-
प्रान्त में प्रतीत होती है, परन्तु यह भी हमें मरना है कि स्त्री-
राज्य एक से अधिक रहे हों। दिग्विजयों में तो सभी देशों को
प्रविष्ट करने का प्रयत्न किया जाता था जिसमें यह कदा न जा
सके कि दिग्विजेता अनुक्त राज्य को सर नहीं कर सका। इतिहास-
कारों का मन है कि मलिनादित्य हिमाचल को तराई के प्रान्तों
के दाइर कभी नहीं गया। उनके प्रचार की प्रशंसा मात्र के लिये
समस्त भारत के दिग्विजय का आडम्बर रचा गया और जन-
भुक्ति और कल्पना के आधार पर देशों के नाम लिखे गये। कह
चुके हैं कि प्रसिद्ध पुरातन्त्रवेत्ता डॉक्टर ग्राइन ने भी यही मन
प्रकाशित किया है और ग्राहम स्मिथ ने कुरु इत्यादि के 'बिलकुल
कल्पित नाम' हैं कदाचन दशमसंहिता में मलिनादित्य के

विश्वजय की अनुधति पर से स्त्रीराज्य की गणना हिमालय
मंथला अन्तर्गत देशों में कर दी हो।

मंथला विषयों में कल्पना के छोड़े तेजी से दौड़ने हैं।
धोड़ा सा भी आधार वा कर शीघ्र ठहर जाते हैं।
तर्क के युग में भी इस प्रकार की प्रवृत्तियों पाई जाती हैं।
जिसका बहादुराण इसी पुस्तक में विद्यमान है, यथा १
३१८-३२० पर गुणिमान पर्यन्त की बहमान के लिये १
विवाद प्रकाश दिया है, हम में कल्पना की मात्रा
बराबर दिखाने देता है। डॉक्टर मजूमदार ने इसे
मान सिद्ध करने के लिये जिस प्रकार का तर्क
है उसे हमारे प्रथकार 'गोमय-वाद्यमीय' न्याय मन्त्र
है, परन्तु उन्होंने अविद्या की मूर्खता और वक्ताशिली
वाले कदम इन मूर्खान्तिन देशों पर हमें हीराचार
कुम्हार के पटार में जमाने का जो प्रयत्न किया है १
विषय में क्या डॉ० मजूमदार प्रारण नहीं कर सकते कि म
नैर्वायिक इसे और सा व्यापक करने हैं १ मय वाग तो यह
अब तक सर्वोच्च सामर्थी न प्राप्त हो पाय, अब तो
मर्तिय कानों का निर्णय शान्त कठिन है।

वर्तमान प्रवृत्ति में सगरी पुस्तक के अर्द्ध बाक्य में कहा
है 'मार्गवर्त की मूर्तिभक्ता को इस दृष्टि में देखना
इसमें वेग के इतिहास पर केसा प्रभाव डालता है'। इसे
है कि इसका निर्णय आने के समय का साथ ही दिखना

ढाँचा

भूमिका

परिचय	पृ० [२
प्रस्तावना २१० ६० हर्गिताल हाग	" [११
ढाँचा	" [२१
§ १ मनुष्य और प्रकृति	३
पहला खण्ड—भारतवर्ष की भूमि	
पहला प्रकरण—भारतीय भूमि का विकास और	
उमके मुख्य विभाग	
§ २ भूमि का विकास और परिवर्तन	१७
§ ३ मुख्य चार विभाग	२४
दूसरा प्रकरण—उत्तर भारतीय मैदान	
§ ४ पानी और प्रदेश—भौगोलिक निरूपण	२८
§ ५ पैदावार और घन-सम्पत्ति—आर्थिक दिग्दर्शन	२९
§ ६ पथपद्धति और ऐतिहासिक पर्यालोचन	३८
तीसरा प्रकरण—विन्ध्य-मैसला	
§ ७ पर्वत, पानी और प्रदेश—भौगोलिक निरूपण	६३
§ ८ पैदावार और घन-सम्पत्ति—आर्थिक दिग्दर्शन	६६
§ ९ पथपद्धति और ऐतिहासिक पर्यालोचन	६८
चौथा प्रकरण—दक्खिन	
§ १० पर्वत, पानी और प्रदेश—भौगोलिक निरूपण	८३
§ ११ पैदावार और घन-सम्पत्ति—आर्थिक दिग्दर्शन	८४
§ १२ पथपद्धति और ऐतिहासिक पर्यालोचन	८७
पाँचवाँ प्रकरण—नीमान्त के पवनमालाये	
§ १३ हिमालय की पर्वतशृंखलाये और निम्न	९१

५ १५ उत्तरपूर्वी सीमान्त	पृष्ठ १	१३
५ १५ दक्षिण और बोलौर	१	१३
५ १६ मरीकोल और वामीर	१	१३
५ १७ हिन्दुपुरा और अकगानिस्तान	१	१३
५ १८ कलान और लासबेला	१	१३
५ १९ हिमालय के पानी और प्रदेश	१	१३
५ २० सीमा-प्रदेशों की पैदावार और धन-सम्पत्ति— आर्थिक दिग्दर्शन	१	१३
५ २१ सीमान्त की पथपद्धति और ऐतिहासिक पर्यालोचन छटा प्रकरण—मसूदा-परिष्ठा	१	१३
५ २२ जल-पथ का ऐतिहासिक पर्यालोचन	१	१३
५ २३ जल और स्थल-पथ का आपेक्षिक मूल्य	१	१३
दूमरा मराठ-भारत-भूमि के निवासी		
मान्य प्रकरण भारतवर्ष की जतीय भूमियाँ		
५ २४ प्राचीन भूमियाँ अथवा स्वाभाविक प्रान्त	१	१३
५ २५ प्राचीन पर्व 'अन' या महान	१	१३
५ २६ हिन्दी मराठ के प्रान्त	१	१३
५ २७ पुरब मराठ के प्रान्त	१	१३
५ २८ दक्षिण मराठ के प्रान्त	१	१३
५ २९ पश्चिम मराठ के प्रान्त	१	१३
५ ३० जनरल-मराठ के प्रान्त	१	१३
५ ३१ पर्वत-मराठ के प्रान्त	१	१३
५ ३२ भारतीय प्रान्तों का परिभाषन		
छाटवी प्रकरण भारतवर्ष की प्रमुख भाषायें और ना		
५ ३३ आर्य और द्राविड		
५ ३४ द्राविड वंश		
५ ३५ आर्य वंश और आर्य मूल्य		
३६ दक्षिण मराठ		

॥ ३७ ईरानी शाखा	पृष्ठ २४६
॥ ३८ आर्यावर्ती शाखा	२४८
॥ ३९ आर्य नम्र का मूल अभिजन और भारत में आने का रास्ता	२५१

नौवाँ प्रकरण — भारतवर्ष की गौण भाषायें और नस्लें

॥ ४० मुंड (शाघर) और किरात (तिब्बतघर्मी)	२५३
॥ ४१ आग्नेय वंश और उसकी मुंड या शाघर शाखा	२५४
॥ ४२ चीन-किरात या तिब्बतचीनी वंश	२५८
॥ ४३ स्यामचीनी स्कन्ध	२६०
॥ ४४ तिब्बतघर्मी या किरात स्कन्ध	२६१

दसवाँ प्रकरण — भारतीय जातियों और नस्लों का समन्वय

॥ ४५ भारतीय वर्णमाला और वाङ्मय	२६८
॥ ४६ भारतवर्ष की मुख्य और गौण नस्लें	२७२
॥ ४७ भारतवर्ष की विविधता और एकता	२८२
॥ ४८ भारतीय जाति की भारतवर्ष के लिए ममता	२८९
॥ ४९ उसकी अपने पुरखों और उनके श्रेष्ठ की याद	२९२

परिशिष्ट

१. प्राचीन भूगोल विषयक

(१) कम्बोज देश	२९७
(२) कम्बोज के पड़ोस में गंगा	३०३
(३) किरात	पृष्ठ ३०४
(४) उत्सवसङ्केत और किलर	३०४
(५) कालिदास के अनुसार भारतवर्ष की सीमायें, और उसका भारत की राष्ट्रीय एकता-विषयक आदर्श	३०८
(६) मौर्य सम्राज्य की उत्तरी सीमा और अशोक का ग्योतन पर अधिकार	३०९

(७) अजुन का उत्तर-दिग्निर्णय	पृष्ठ ३१
(अ) 'दुर्लभ' से प्राग्बोधित	३१
(१) अन्नगिरि, बहिर्गिरि, उषगिरि; 'उलूक', लोहित.	
सुन्द और चोत्र	३१
(२) श्रुतिक या 'दुर्लभ'	३१
(अ) किम्बुद्वय देश से उत्तर कुद	३१
(८) कागदर	३१
(९) श्री-राज्य	३१
(१०) शुक्तिमान पर्यन्त	३१

२. भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा, राष्ट्रलिपि, राष्ट्रीय वर्णमाला
और परिभाषाये; तथा कुछ ग्रन्थों की

भाषा-लिपि समस्या

(१) हमारे देश के भाषा-विषयक लेख्य अनैत्य का प्रस्ता	३२
(२) नागरी लिपि और भारतीय वर्णमाला	३२
(३) उद्	३३
(४) लिपि की लिपि-समस्या	३३
(५) उन्मत्तस्थित ग्रन्थों की भाषा-समस्या	३३

३. भार्गविक मंत्राये और परिभाषाये

४. भारतवर्ष की प्राचीन व्यवस्था-विभाग

महोदय और वशिष्ठ	३४
वशिष्ठ-वर्णिका	३४

नोट्स

१—विश्व में भाषा और लिपि के पर्यन्त और पार्यन्त	३५
२—विश्व में भाषा और लिपि के पर्यन्त और पार्यन्त	३५
३—भारतवर्ष की प्राचीन व्यवस्था	३५

॥१. मनुष्य और प्रकृति

मंजु ने यह कहा था सकता है कि अनुपम और प्रहृति ने दो
 १) मानव इतिहास की प्रेरक शक्तियाँ हैं; इन दोनों का पारस्परिक
 संबंध और प्रतिक्रिया का सूत्रान्त ही अनुपम का इतिहास है।
 अनुपम स्वतन्त्र नहीं है, वह अपने कृति और अपने चरित्र का
 सत्य स्वयं अपने विचारों और इच्छाओं के अनुसार करता है।
 हेतु अनुपम का कृति उसकी प्राकृतिक परिस्थिति की अवस्थाओं
 से परिचित और प्रभावित होता है, प्रहृति के कथनों को वह
 ठीक नहीं सकता।

संगीतशास्त्री (इन्गो) के निम्नलिखित दिग्दर्शन में विज्ञान
मेहनत का पहले पहल आविष्कार होने पर दुर्भाग्य से एक
मनुष्य ही था जो मानव इतिहास के प्रत्येक उत्तर-प्रश्न को
मानव भौतिक कलाओं में धराया था। वह यह निष्ठ करने का
इत्तफा करता था कि मानव इतिहास का विकास प्राकृतिक प्रभावों
से नियंत्रितियों का ठीक अनुसरण करता है, प्राकृतिक या
भौतिक परिस्थिति मानव इतिहास की सबसे बड़ी शक्ति
है। उदाहरण के लिए, मनुष्य का सम्बन्ध की आरम्भिक दशा में
जब वह अपना जीवन पृथ्वी में सीधा लेकर अपने-अपने में
एक दूसरे को देख कर शिक्षा करते ही गुप्तता करना जानता
था, मनुष्यों के विभिन्न सुरों की तीन तरह की विभिन्न परिस्थि-

[illegible]

तियाँ थीं। समुद्र-तट, सघन वन और सूखे घांगर या ब
 एक मनुष्य का कुछ दिन तक गुज़ारा हो सकता है, किन्तु उसका इ
 दुर कर पीने हुए वह बरसों गुज़ार सकता है। इस प्रकार जहाँ प
 शिकारी की जीविका के लिए कई वर्षोंकी जंगल की श्रम होनी
 वहीं उगने हो। साथे में पशुपालकों का एक भण्डा कुछ गुज़ारा क
 लगा। हमारे जहाँ शिकारी मनुष्य अपनी कर्मन्त्रियों की प्रेरक शक्ति से
 काम लेना था, वहीं पशुपालक पशुओं की शक्ति से भी काम लेते। इन
 मनुष्य की बुद्धिमत्ता में तो हमसे एक व्यक्ति ही होगा। पैदल और स
 का परम्परा क्या सुझावना है? उनके विचार शिकारी मनुष्य जहाँ भ
 गीर्वा मनुष्य को मारकर चेंद या ला हो सकता था, वहीं पशुपा
 उमें भी काम बनाकर उस में पशु की तरह काम लेने लगा। इस प्र
 हमारे की सैवक में लाभ उठाने का तरीका बना। अपने जानवरों
 में मनुष्यों के शिकारों के पास कुछ सम्पत्ति और पूँजी
 होने लगी। पशुपालक वना से मनुष्य घीरे घीरे तीवरी भ
 कुछ भण्डा में पहुँच गया। आरम्भिक कृषि का कुछ ज्ञान तो
 शिकारी भण्डा में ही हो गया था, जब लाकर उनकी गुदलिर्वा
 अपने हरे के पास काम देना और फिर उन्हें उतना देना था तब
 पीरे उठाने की शक्ति मायूम हो जाता कदम म था। किन्तु
 हृषि तब कुछ दूरे जब वह जानवरों या घासों के पशु की तब
 लेनी कामे लगा। पशुपालक से कुछ दना ॥ भाने पर उमरों
 की शक्ति तब काफी। एक वर्षीय बरागाह की माँदा एक वा
 लेन पर कई गुने मनुष्यों का गुज़ारा हो सकता है। एक भव
 जाने पर मनुष्य पहले पदक स्थावर शक्तिगत सम्पत्ति बनाने।
 हृषि के साथ ही घीरे घीरे शिकारों का भा आरम्भ हुआ। पशुपालक
 में इन शक्ति शिकारों की दना तब मनुष्य के पास प्रायः हो ॥
 शक्ति की — अपने और जान गुलामों के पशु की या जानवरों।
 की। ११११११ और ११११११ में भण्डा मौसमी दवाओं से बनने वाल

मकी। इस शैली के एक प्रमुख प्रवक्ता बकल थे। उन्होंने ने
 उनके अनुयायियों ने भौगोलिक कारणों से अपनी
 यह मित्र कर दिया था कि पूर्वी देशों के लोग क्यों
 हैं, और मध्यता का उद्योग विकसित करके यूरोप के ठीक
 वायु और विस्तृत पेशावा समुद्र-तट पर ही हो सकता
 आधुनिक भारत की गुलामी के मूल कारण उनके जड़
 निर्भीक समाज संस्थान की बुनियाद रूप ज्ञान-पौन को उनके
 भारतवर्ष के गरीब जनवायु और उर्वरा भूमि को
 उपज मित्र कर दिया था। क्योंकि इस उर्वरा भूमि में
 तो प्रकृति अपना अत्यन्त मौल्य रूप प्रकट करती है, धीरे-
 मेंहनत में आदमी अपने बिना भरपूर भोजन पैदा कर
 जिन में वह मध्य में आनमी हो जाता है और दूर की
 करता नहीं मीनता। दूसरी तरफ जय प्रकृति यहाँ
 प्रकट होती है, तथा वह इनकी मदद होती है कि मनुष्य
 सामान अपने को विकसित निःशक्त पाना है। इस प्रकार इस
 आत्मविश्वास के बजाय अपने को मध्य का गुलाम मानने
 आदिन बनती है। अदृश और माय-विश्वासी होने के
 दुर्भिक्ष के समय यहाँ के जनमागण निरी सुमीवन में
 जाते हैं, उस समय उनके समाज के अल्पसंख्यक चालाक
 की जिन्दगी ने सुभिक्ष के समय आमाजी में संघर्ष कर
 होता है वह आनी है, और के जनमागण को खूब लूट
 दवा मरने हैं। इस प्रकार ऐसे जनवायु में मध्यता ही
 में थेलों में पैदा हो जाता है, जिस का परिणाम
 मायवाद और द्वैधीय के इस बानाबान में
 हैम जन दुःख मरता है। भारत की सामाजिक बनावट
 जानकर कर करन ने यह दिखनाया कि भारत मने
 भारतवर्षी क्या मध्य में सामाजिक तथा व्यवहारिक वायु

बेपरवाह होते हैं। उनकी रसायन भी गलत थी, और उन का इतिहास भी गलत। किन्तु जब चावल-मछली खाने वाले जापानियों ने युरोप की गेहूँ-गोश्त खाने वाली एक सय से तकड़ी जाति को पछाड़ दिया, तब तो उन के घालू के मछल की पुनिपाद हो हिल गई। कुछ माइयों चतलाया करती हैं कि गाजर का पानी चाँदनी में रखने में उस में रोशनी लग जाती है और इसलिए इसको पिलाने में कमजोर ज़िगर के आदमी के ज़िगर में भी रोशनी आ जाती है ! बकल और उनके साथियों की इतिहास की भौगोलिक व्याख्या-पद्धति भी प्रायः ऐसी युक्तियों पर उतारू हो जाती है। इन व्याख्या-शैली को देखते हुए एक जर्मन विद्वान ने बकल को मद्य में धुँड़े और आद्वितीय लालमुखाड़ (*M. rubra*) की पदवी दी है ।

दुर्भाग्य से भारतीय इतिहास की विवेचना में अभी तक इसी लालमुखाड़ व्याख्या-शैली का होर है और विद्यार्थियों की पाठ्य पुस्तकों में तो इसका एकमात्र दौर्दगा है। हमारे भातों और चारलों की पुरानी व्याख्या के अनुसार राजपूत और मुसलमान राज्यों की प्रत्येक लड़ाई का मूल कारण किसी न किसी सुन्दरी का रूप होता था, और राजपूतों की प्रत्येक हार का कारण या तो उनकी उदरगता (उपनान कूरुता) और या उनके किसी घर के आदमी का विरवानघात ! भारतीय इतिहास के बहुत से साधुनिक परिदृश्यों की व्याख्या भी हमने बहुत आगे नहीं पहुँचती। स्वर्गीय विद्वान डा० विन्सेन्ट स्मिथ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'औस्मरहट हिन्दुओं और इस्टिया' में

१. हमने लालमुखाड़ को *M. rubra* कहा है क्योंकि इसका रंग लाल होता है। भाषा-सिक्ता, भाषा-३ उमर पुस्तक का नाम 'रुद्र अनुवाद' है।

दुर्बलता सिद्ध हो जाती" है, किन्तु सिलिज्जक^१ के चन्द्रगुप्त में हारने से क्या सिद्ध होता है मो घतलाना वे भूल गये हैं। "उनकी दृष्टि, भारतीय पुरातत्त्व में स्वयं भारी भारी आविष्कार करने के बावजूद भी, दकल, हीगल, मेन और मैक्स मुइलर की न्यापनाओं से आगे नहीं बढ़ पाई," क्योंकि "ऐतिहासिक तारतम्य की तमोड़ का स्मिथ के लेखों में प्रायः अभाव ही है।" यूरोप और एशिया शब्द सिकन्दर के समय में भी थे, पर तब उनका वह अर्थ न था जो आज है, और सिकन्दर के समय में अभिमानी यूनानियों ने आजकल के पच्छिमी यूरोप के उस समय के उन जंगली वारिन्दों में से, जिनके वंशज विसैन्ट स्मिथ और उनके देश वाले हैं, यदि कोई यह कहता कि आप भारतीय आर्यों की अपेक्षा हमारे अधिक सगोत्र हैं, तो वे उस 'दर्रर' की बात पर घृणापूर्वक हँसते !

हमारी पाठशालाओं की पाठ्य पुस्तकों के लेखक तो स्मिथ के भी कान काटते हैं। एक प्रसिद्ध डाक्टर और अध्यापक की भारतीय इतिहास विषयक एक अत्यन्त प्रचलित पाठ्य पुस्तक में मैंने पढ़ा था कि भारतवर्ष का जलवायु गर्म होने के कारण यहाँ के निवासी स्वभावतः कमजोर और ठंडे देशों के नरद्यूत निवासियों के शिकार होते रहे हैं। भूगोल की एक हाई स्कूल पाठ्य पुस्तक में, जो मेरे सामने है, यों लिखा है—

१. भर्नी हिस्टरी ऑफ़ इंडिया (भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास) चौथा संस्करण, पृ० ११७।

२. 'सिलिज्जक' का भन्तिन स प्रथमा एकवचन का प्रत्यय है, न कि नाम का भदा।

३. ऐन इंग्लिश हिस्टरी ऑफ़ इंडिया (भारत का एक अंग्रेजी इतिहास) पॉजिटिव माइन्स क्वाटली (गजानान-विज्ञान-ग्रन्थमिक), न्यूयार्क, जि० २४।

नमना क्या ठंडे तिब्बत के निवासियों से बढ़ कर भी कहीं है ?

यह कहा जा सकता है कि भारतीय सेनाओं यदि पिछली शताब्दी में लगातार विजय पर विजय पाती रही हैं तो अंग्रेजों की अधिनायकता में। किन्तु जो भी हो गर्म जलवायु से देह दुर्बल हो जाने की बात तो इस में कट जाती है। और वे दूसरी की नायकता के दिना स्वयं अपने को संगठित नहीं कर सकती, उनकी यह परिश्रम दुर्बलता क्या उसी बीमारी को सूचित नहीं करती जिनके कारण हमारे ये पुष्पक-लेगक स्वयं कुछ नहीं मोच' सकते और अपनी आँखों कुछ नहीं देख सकते - इस परिश्रम दुर्बलता का कारण निःसन्देह भारतवर्ष का जलवायु नहीं है।

अध्यापक बदनाथ मरहवार ने मराठा जाति के भारे परिग्रह के एक एक गुण-दोष का वास्तव महागष्ट की पहाड़ी परिस्थिति के प्रभावों में गंभीर निकाला है। महागष्ट की प्राकृतिक परिस्थिति ने मराठा इतिहास पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला है और छाम धर शिवाजी का परिग्रह तो महागष्ट की भौगोलिक घनावट पर ध्यान दिये बिना समझ ही नहीं जा सकता, सो टीका है। किन्तु जब अध्यापक महोदय मराठी भाषा में भी, जिसमें हिन्दी 'आर' जैसा कोई सम्मानमूलक शब्द नहीं है, महागष्ट के पहाड़ों का प्रतिबिम्ब देखने लगते हैं, तब हम उनका साथ नहीं दे सकते। ये सब आमतानी में भूल गये हैं कि गुजरात और पंजाब की सम्प्रदायमत्ता भूमियों के निवासी भी 'तम' और 'तुम' में यह सब कोई अन्य सम्मानमूलक शब्द नहीं जानते। दूसरे यदि उन्हें यह सिद्ध करना था कि महागष्ट की भौगोलिक

[illegible]

करके नहीं जाती है। नमुन्य की स्वतन्त्र विचारपूर्वक कृति
 तब वह कोई न्याय नहीं छोड़ती। मानव इतिहास के अने
 पहलुओं पर यह व्याख्या भी पूरी नहीं करती। नमुन्य का स्वतन्त्र
 कर्तृत्व आज इस युग में ही जब कि विज्ञान के महारे अपने प्रकृत
 को बहुत दूर तक अपने बरा में कर लिया है नहीं जगा उस
 प्राचीन सरल पशुप्राण के बनाने में भी जब आरम्भिक चरवाड़े
 जंगल में छिरे छिरे विन्ताकृत मनुकृति से तारों को मँकने और
 उनकी गति का निरोध करने लगने थे, या इन नमुन्य और
 संसार के उद्भव और अन्त के प्रश्नों का चिन्तन करने लगने थे,
 तब भी उनकी वह विन्ता जीवन-संभान की किसी प्रेरणा को
 नहीं प्रभुव मानव प्रतिभा के महान् उद्बोधन को सूचित करती
 थी। नमुन्य की विचारपूर्वक कृति इतिहास के प्रवाह की एक
 प्रबल प्रवर्तक शक्ति है जो मानव इतिहास के धुँधले आरम्भ के
 समय से काम कर रही है।

प्राकृतिक परिस्थिति का नमुन्य पर बड़ा प्रभाव है। हिन्दु नमुन्य
 अपने प्रयत्न में उस परिस्थिति तक को बहुत दाल नक़्सा है।
 वह रोगान्धान को नहरों में सोब सकता, दलदलों का पानी मोल
 कर उन्हें हरा भरा मैदान बना सकता, हिमालय और हिन्दूकुश
 को मार्ग देने के लिये बाधित कर सकता और पानाना की पहाड़ी
 जिन में छेद कर अपने जहाज़ों के निर गन्ता निकाल सकता है।
 नकारा लोक के नेत्र भी उसके प्रभाव से बाहर नहीं हैं।
 नमुन्य के इस मानधर्म को खोकार करते हुए भी हम उन्नि-
 त की आर्थिक व्याख्या को अधिकारा में सब मानते हैं।

नमुन्य-वातियों की उनकी आध्यात्मिक संस्कृति ()
 १. शैव सं० आर्य सं० वन्त हुए मनुजिक संस्कृति
 आध्यात्मिक संस्कृति ()

का न मही उतनी भौतिक सभ्यता (Civilisation) के विकास का जीवन मयाम या रोटी की छीन मण्ड मय में वही प्रवर्तक कारण है—यदि स्पष्ट कारण नहीं तो कम से कम मुख्यतम उत्तेजक तो अवश्य है। मनुष्य की अनेक संस्थाएँ जिन्हें हम सर्वथा धार्मिक और सामाजिक माने बैठे हैं—उदाहरण के लिए विवाह और परिवार की संस्थाएँ—मुख्यतः आर्थिक शक्तियों की उपज हैं, और उन पर धार्मिक कलई पीछे से बनी है। उस आध्यात्मिक संस्कृति की भी आर्थिक शक्तियों और अवस्थाएँ चाहे उत्पादक कारण न हों, प्रतिबन्धकभाव-रूप से वे उसका कारण होती हैं, और प्रतिबन्धक रूप से उसकी उत्पत्ति को नियन्त्रित कर सकती हैं। और भौगोलिक परिस्थिति इन आर्थिक अवस्थाओं का एक बहुत बड़ा अंग और अंश है। यह परिस्थिति मानव इतिहास की एकमात्र प्रवर्तक शक्ति भले ही न हो, उसके विकास का मार्ग बाँधने वाला एक बहुत बड़ा कारण अवश्य है, यहाँ तक कि किसी देश की भौगोलिक परिस्थिति को समझे बिना उसके इतिहास को समझना असम्भव है। यह मानने के लिए भौगोलिक परिस्थिति के प्रभावों को अतिरक्षित करके दिखाने की जरूरत नहीं है। अतिरक्षित वास्तव में धुँधले और अपूरे ज्ञान की दशा में होती है।

इसीलिए भारतीय इतिहास का अध्ययन आरम्भ करने से पहले उसकी परिस्थिति की आलोचना और विवेचना करना आवश्यक है, जिससे इतिहास पर उसके प्रभावों को समझा जा सके, और उन प्रभावों की सीमा को ठीक ठीक निश्चित किया जा सके। भारतीय परिस्थिति की उसी प्रकार की विवेचना का एक जतन अगले पृष्ठों में किया जायगा। पहले स्पष्ट में हम भारतवर्ष की भौगोलिक परिस्थिति की पड़ताल करेंगे, और दूसरे में भारतीय परिस्थिति की।

पहला खण्ड
भारतवर्ष की भूमि

पहला प्रकरण

भारतीय भूमि का विकास और उसके मुख्य विभाग



§२. भूमि का विकास और परिवर्तन

ध्यान रहे कि हमें भारतवर्ष की भूमि-रचना को इस दृष्टि से देखना है कि उसने देश के इतिहास पर कैसा प्रभाव डाला है। भूतल की उपरली आकृति अर्थात् पर्वत, नदी, मैदान, जंगल, समुद्र, सरोवर आदि का उनमें संस्थान-क्रम, उसकी नमी और गर्मी, उसकी उपरली और निचली तहों की अर्थात् वानस्पतिक, जाल्बिक और खनिज उपज, आदि सब वस्तुएँ उसके इतिहास पर प्रभाव डालती हैं, और ये वस्तुएँ भी सदा एक-सी नहीं रहती तो भी उनका विकास और परिवर्तन बहुत करके मानव इतिहास आरम्भ होने से पहले पूरा हो चुका था, और उसके बाद उसकी गति इतनी मन्द है कि मनुष्य की दृष्टि में उन्हें स्थिर कहा जा सकता है। क्योंकि भारतीय परिस्थिति की आलोचना में उसके विद्यमान रूप को ही हम सामने रखेंगे, इसलिए इन पुराने परिवर्तनों का कुछ निर्देश पहले कर देना जरूरी है।

ज्योतिष-शास्त्रियों का कहना है कि हमारी पृथिवी तथा वे दूसरे ग्रह जिनका समूचा परिवार सौर मण्डल कहलाता है पहले सब सूरज में ही थे। सूरज से अलग होने के बाद पृथिवी धीरे-धीरे कैसे ठण्डी हुई, और उस देश में उसका जमाव-काम कैसे हुआ, इसकी विवेचना भूगर्भ शास्त्र करने है बहुत समय तक वह

इनकी गर्म थी कि उस पर कोई जीव पैदा न हो सकता था। उस काल की अजीव कल्प (Azoic age) कहते हैं। उस कल्प में भी भूमि की बहुत सी चट्टानों के स्तर क्रम से बन रहे थे। अब प्रायः भूगर्भ के अन्दर है। पृथिवी को पैदा हुए त्रिजने समय अब तक बीता है उसे चौबीस घण्टा माना जाय तो १५ में बारह घण्टा अजीव कल्प रहा। उसके बाद प्रारम्भिक भाग में भूस्फटन से घेरें हुए थी पानी बन कर समुद्र में जमा होने लगे और उसके किनारे उथले पानी में और नमी वाली जमीन पहले पहल जीव सृष्टि होने लगी। चट्टानों के उपरले स्तरों का भी क्रम से विकास होना रहा। जीवों में वनस्पतियों सम्मिलित हैं। परिस्थिति के विकास के साथ साथ जीवों के भी लगातार विकास होना गया। जीव सृष्टि के आरम्भ अब तक के काल को जीवों का विकास-काल देखते हुए त्रिजने मुख्य स्तरों में बाँटा जाता है—पुराणजीव कल्प (Palaeozoic age), मध्यजीव कल्प (Mesozoic age) तथा नव्यजीव कल्प (Cenozoic age)। इन्हें प्रथम (Primary) द्वितीय (Secondary) और तृतीय (Tertiary) कल्प कहते हैं। पुराणजीव कल्प की अवधि अजीव कल्प से आधी। पन्ध्रह कल्प की चट्टानों में उस कल्प के जीवों के प्रस्तारण (Fossils) पाये जाते हैं। यदि हम किसी ऐसे स्थान जहाँ भूस्फटन में या नदियों समुद्रों आदि के धो डालने से की नीचे का सतह ऊपर न निकल आई हो उस स्तरनिर्माण (Stratigraphy) या सतहयन्त्री का अध्ययन करें, यह देखें कि जर्मनी की एक के नीचे दूसरी परत या सतह किस प्रकार परिवर्तन होता गया है, तो हम यह पायेंगे कि उस ऊपर नव्यजीव कल्प की रचनाये हैं, फिर मध्यजीव कल्प इत्यादि। इन कल्पों के फिर अनेक उप-विभाग हैं। मनुष्य

के दोषाये जीव या उदय पहले पहल नव्यजीव बल्प के आरम्भ में हुआ।

इन पत्थरों का इतिहास जानने वाले बतलाने हैं कि भारतवर्ष में मध्य में पुरानी रचना आड़ाबला' विन्ध्यमेखला और दक्षिण भारत का पठार है। उनका विषय अर्जाय-बल्प में ही पूरा हो चुका था। उत्तर भारत, अफगानिस्तान, पामीर, हिमालय और तिब्बत इन समय मध्य समुद्र के अन्दर थे। वही प्राचीन समुद्र की लहरों ने आड़ाबला की पड़ी हुई नोक को काट काट कर हमारे लाल पत्थर से गालिया का पठार बना दिया। द्वितीय बल्प के अन्तिम भाग गटिका युग (Tertiary Period) में एक भारी भूकम्पों का मिलमिला शुरू हुआ जो तृतीय बल्प में आरम्भ तक जारी रहा। इसी भूकम्पों में हिमालय, तिब्बत, पामीर आदि तथा उत्तर भारतीय मैदान के कुछ अंश समुद्र के ऊपर उठ आये। हिमालय की सय से ऊँची चोटियों पर भी गटिका-युग के जीवों और वनस्पति के अवशेष पाये जाते हैं जब कि विन्ध्याचल और आड़ाबला की भीतरी चट्टानों में जीवों की सत्ता का कोई चिह्न नहीं मिलता। उत्तर भारतीय मैदान का पानी मुख्य हिस्सा बाद में नदियों ने पहाड़ों से मिट्टी ला लाकर बना दिया।

किन्तु ये सब घटनाएँ मानव इतिहास में प्रायः पहले की हैं। तो भी एक तो देश के पहाड़ों की भौगोलिक स्थिति को और उस की जनित सन्नति के स्वरूप और प्रकार को ठीक ठीक समझने

१. राजपूताने का प्रसिद्ध पर्यटन स्थल नाम हिन्दी में अंगरेज़ी में और फिर अंगरेज़ी में हिन्दी में आने हुए 'आवली' बन गया है। आड़ा = तिरछा, घना = पर्यटन। दे० परिशिष्ट ३।

२. ऊँचा पहाड़ी मैदान, अंगरेज़ी Plateau. दे० परिशिष्ट ३।

के लिए इन घटनाओं के इतिहास को थोड़ा बहुत जानने जरूरत होती है; दूसरे, भारतवर्ष के आरम्भिक मनुष्यों ने कि वे शिकारी दशा में पत्थर के हथियार* बर्तते थे, वह पुरानी परिस्थिति देखी होगी, इस कारण उनके इतिहास सम्झ सकने के लिए हमें उस परिस्थिति के रूप का पता पाड़िए। चदाहरण के लिए, भूगर्भ शास्त्रियों का कहना है। कश्मीर की रम्य घाटी कभी समूची एक झील थी, कश्मीर पुरानी दन्तकथाएँ भी इसी बात को सूचित करती हैं, और से आरम्भिक मनुष्यों के पत्थरों के जो हथियार पाये गये हैं सम्भवतः उस काल के हो जब कि उस घाटी में आरम्भिक और दलदल के बहुत से अंश बाकी थे। उस काल के के भ्रमणों और प्रवासों के मार्ग पर विचार करते समय लिए उस झील को ध्यान में रखना जरूरी होता है। तो भी युग मनुष्य की दृष्टि से प्रागैतिहासिक ही था।

असल मानव इतिहास तो तब से शुरू होता है जब के गिरौद किसी नियम और व्यवस्था से संगठित होकर अन्दर एक आभात सामूहिक एकता अनुभव करने लगते हैं.

१ मनुष्यके भौतिक-माध्यमों की क्रमिक उन्नति को देखने हुए विचार उसकी सभ्यता के विकास का एक पैमाना बनाया गया है जिसे शिकारी अवस्था, पशुपालक अवस्था आदि विभिन्न दर्जें हैं, उसी पर उसके हथियारों की क्रमिक उन्नति की सुनिवार पर एक दूसरा पैमाना बनाया गया है। इस पैमाने में सबसे पहले पुरातात्विक-युग (Palaeolithic age) था, जब कि मनुष्य पत्थर के भदे हथियारों से चलेला था, उसके बाद नवतान-युग (Neolithic age) आया, जब कि पत्थर के हथियार बर्तने लगा। फिर ब्रॉन्ज-युग (Bronze age) या ताँबे-युग और अन्त में लोह-युग आया। अन्त-युग में इना के साथ साथ चलता है।

अर्थात् जब इनका समाज एक तो किन्हीं साक्षात्कार विधि व्यवस्था या नियम पर संगठित होता है, और दूसरे वह अपने पूर्वजों से अपने वंशजों तक एक धारावाहिक परम्परागत एक-सूत्रता अनुभव करने लगता है.—अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपने को एक समूह का अंग समझता है जो समूह एक आकस्मिक अस्थायी जमघट नहीं प्रत्युत एक परम्परा से चला जाने वाला अनेक पुरवों का समुदाय होता है। ऐसे समूहों के सामूहिक जीवन की घटनाओं का क्रमिक वृत्तान्त ही इतिहास कहलाता है, इसलिए इतिहास की सत्ता से पहले सामूहिक चेतना होना आवश्यक है। कृपक व्यवस्था में पहुँचने के बाद जब समुदायों के समूह निश्चित प्रदेशों में स्थायी रूप से बसने लगते हैं, तब तो यह सामूहिक चेतना पैदा हो ही जाती है, किन्तु उसके कुछ पहले पशुपातक और फिरन्दर दशा में भी इसका प्रायः उदय हो चुका होता है।

उक्त मानव इतिहास के युग में हमारे देश के पर्वतों को तो लेगभग सनातन और स्थायी कहा जा सकता है, किन्तु उसके भू-निवेशन में और छोटे साधारण परिवर्तन होते रहे हैं। वे मध्य परिवर्तन समुद्रों, नदियों और मैदान की आकृति में हुए हैं। बहुत पुराने समय में राजपूताना का धर एक उथला समुद्र था। सम्भवतः वह दशा आरम्भिक ऐतिहासिक काल में भी बनी रही थी। सरस्वती नदी वसी समुद्र में अपना पानी ले जाती थी। भारतवर्ष की सभी नदियों पहाड़ों की निम्नो दो दो कर अपने मुहानों पर टेर करती और समुद्र की कोख में से लगातार नये-

१. गार्गीय-एन्सेन्ट इन्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन ('प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक अनुभूति') नामे इस ग्रन्थका निर्देश प्रा० भा० पृ० ४० या प्रा० ४० संकेत से किया जायगा) . पृ० २६० ।

सैदान निचालनी रही हैं। अकबर के जमाने में सिन्ध नदी काँठा मृतमचीन पर समुद्र से लगता था, आज वह दक्खिन है ! इस प्रकार किसी जमाने में जहाँ बड़े बन्दरगाह आज वहाँ ऊँड़ खँडर हैं ! ताम्रपर्णी नदी के मुहाने में कोरब सन् के आरम्भ में एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था, अब वह सूखे बंगाल में ताम्रचूक और गुजरात में सुरत और भरुच की भी इसी प्रकार पहले की तरह समुद्र के किनारे नहीं रही। वर्ष की नदियाँ भी अपना मार्ग बहुत बदला करती हैं, उनके इन परिवर्तनों को ध्यान में न रखने से बहुत बार इतिहास को समझना असम्भव हो जाता है। चौथी पू० में पाटलिपुत्र गंगा और शोण के संगम पर बसा था, के पटना से सोन दस-बारह मील पच्छिम खसक गया। आठवीं शताब्दी ई० के शुरू में राप्ती मुलतान में मिलती थी, और व्यास सतलज में मिलने के बजाय नीचे जाकर चिनाब में। इस बात पर ध्यान तो मुहम्मद इब्न कासिम की मुलतान की लड़ाई समझ नहीं आ सकती। किन्तु इसी सन् से ५-६ सौ बरस पारक मुनि के समय में व्यास आजकल की तरह मिलनी थी। बहुत जल्द जल्द अपना पाट बदलने कोसी भारतवर्ष की सब नदियों से अधिक बदताम है।

१. विषाट् सुतुद्रयो मम्भेरमाययो—विद्वत्, २ ७, १। इससे लगता है कि दोनों परस्पर मिलनी थी, परन्तु दुर्गाचार्य इसकी स्पष्ट लिखत हैं—विषाट् सुतुद्रयोः नद्या मम्भेर सगमम् भाषयो यत्र विषाट् सुतुद्रयो इनर्गाभि सिन्धुर्वादिभिरनर्दाभि सग्भिन्ने इत्यर्थः। अन्तिम वाक्य में दुर्गाचार्य ने विष्णुकुल गोलमाल कर निरुक्तकार के जवदो में वह अर्थ दगिज कहा घतान हाना। अतिस सूक्त (३, ३१) का व्याख्या में निरुक्तकार ने ये शब्द कहे हैं

प्राचीन हरी भरी बस्ती को सूचित करने हैं, किन्तु चिनाच की नई नहरें निकलने सकूँ यहाँ ऐसा विधान जिसमें अनेक स्थानों पर मृगमरीचिका के दरय देखे जासकते थे।

भूमि की निचली तह में कोई विशेष प्राकृतिक इतिहास की स्मृति में नहीं हुआ, पर मनुष्य के हाथों ने स्थानों को खोद खोद कर खाली कर डाला है। गोलकुण्डा पुष्पाडु की खानें अब हीरे और गोमेद नहीं सूनीं, और सिमान की आधी खुदी गन्धक की खानें हमारे पूर्वजों के हाथों के स्मारक रूप से विद्यमान हैं।

इन परिवर्तनों पर ध्यान रखते हुए हम भारतीय विद्यमान नक्शे पर उन सब बातों का अध्ययन कर सके जो हमारे इतिहास के मार्ग को प्रभावित करती रही हैं। भविष्य में भी करेंगी। भारतवर्ष की सतह के किसी नक़्शे को सामने रख कर आगे आने वाली बातों को सुगम होगा।

६३. मुख्य चार विभाग

भारतवर्ष की सतह के किसी अच्छे नक़्शे पर, जिस समुद्र-मग्न से भिन्न भिन्न ऊँचाइयाँ अलग अलग रंगों में रक्खी हों, जो बात मग्न से पढ़ते देख पड़ती है वह यह गंगा और सिन्ध के मुहानों में शुरू कर उन नदियों के कोठों तक लगातार दो मैदान चले गये हैं जो ऊपर जाकर हो गये हैं। यही उत्तर भारत का विशाल मैदान है।

१. प्राचीन भारत में जो हम समूचे उत्तर भारतीय मैदान की गेनने का विचार पाते हैं। पारसि नाहमय में उसका नाम है—अग्नीष्वि (अग्नीष्वि) अग्नीष्विप नल, ३० ज्ञानक (फौसबोल-स०) ज्ञ० १,

सतलज के और आधा जमना के खादर के साथ गिन लें, तो उत्तर भारतीय मैदान के स्पष्ट दो हिस्से हैं—एक सिन्ध का मैदान और दूसरा गंगा का मैदान ।

इन दोनों हिस्सों के फिर कई स्पष्ट टुकड़े होते हैं । सिन्ध के मैदान में जहाँ सिन्धु-नदी अपनी पाँचों मुखायें फैलाये हुए है, वह पंजाब है; जहाँ इन सब का पानी सिमट कर अकेले सिन्ध में जागया है, वह सिन्ध है । इसी प्रकार गंगा के मैदान में जहाँ गंगा जमना दक्षिण-पूर्व-वाहिनी हैं, वह उपरला गंगा-कोटा है, जहाँ वह ठीक पूर्व-वाहिनी हो गई है बिचला गंगा-कोटा है; और जहाँ फिर दक्षिण मुँह फेरकर उसने मनुष्य की तरफ अपनी बाँहे फैलाये हैं वह निचला गंगा-कोटा या गंगा का मुहाना है । वहाँ ब्रह्मपुत्र भी उसमें आ मिता है, इन दोनों के मुहाने का पुगना नाम समतल है । उत्तर तरफ गंगा और ब्रह्मपुत्र के बीच का मैदान बरेन्द्र है, समतल के पूर्व मैदान का टुकड़ा पुगना बंग है, और समतल के पश्चिम राढ़; राढ़ बरेन्द्र बंग और समतल मिला कर बंगाल का मैदान बनता है । गंगा-मैदान के उत्तर-पूर्वी छोर पर ब्रह्मपुत्र के पश्चिम-पूर्व प्रवाह का कोटा स्पष्ट एक अलग प्रदेश-खामान-है । इन प्रकार उत्तर भारतीय मैदान में कुल ये प्रदेश हैं—(१) सिन्ध, (२) पंजाब, (३) उपरला गंगा-कोटा, (४) बिचला गंगा-कोटा, (५) बंगाल और (६) खामान ।

३५. पैदावार और धन-सम्पत्ति—आर्थिक दिग्दर्शन

उत्तर भारत का यह मैदान समस्त के अत्यन्त उपजाऊ इलाकों में से है । मध्यम का उद्योग करने वाले प्रदेशों के उपजाऊ कोटों में से है तथा यह और मध्यम के उद्योग

कर लहरत प्रकट करने, और चीन जाने भारतवर्ष में परिचित होने तक उन और देशों को ही जानते थे ।

१. भारतवर्ष में भी वैदिक काल में कलाम होने का कोई प्रमाण नहीं है । वेदों में उन, मग 'लोम और ताप' के ही वपनों का उल्लेख है । कलाम का मग में रहना उल्लेख आश्वलायन धर्मसूत्र (१, ४, १०) में है । बलहना दूनिवसिती के गिराह धातुन नापयत्तन्त्र वन्दोत्तपयत् लेट वैदिक बह्मण्य में कलाम का जिक्र न होने का कारण यों कहते हैं कि 'उन समय तक आर्य लोग दक्षिण का पुरुब के कलाम पैदा करने वाले जिनों तक न पहुँचे थे (इहनीनिक नापयत्तन्त्र प्रोप्रेम इन पुनयेन्त इतिहा, — प्राचीन भारत का आर्थिक जीवन और प्रगति — विन्ड १ पृ. ४,) । इन प्रकार वैदिक काल में कलाम न होने की उन्हीं में एक भौगोलिक व्याख्या की है । किन्तु वैदिक काल में आर्य लोग पंजाब में और उपरले गंगा कीटि तक थे, और उसके बाद पुरुब तथा दक्षिण पहुँचे, एक तो यह बलहना सर्व-मान्य नहीं है, देख पाठोति—आ. अ. पृ. २९३—३०२ । दूसरे उस बलहना को माना जाय तो ईरानों नदीन की बलहना ठीक उन्हीं पड़ती है, क्योंकि दक्षिण-दक्षिणी पंजाब वहाँ बहिया कलाम पैदा करने में समर्थे भारत में केवल बराह और गानदेश में पाँटे हैं, और उसी पंजाब, बुराहम और उपरले गंगा कीटि में भी बहुत अच्छी कलाम उगवती है, वहाँ पुरुब के जिनों अर्थात् विज्ञान गंगाए में—अधुवनी कीटि-गंगा को छोड़ कर—किसी काल की कलाम नहीं उगवती । भौगोलिक व्याख्यान ऐसे इतकेवन में नहीं करनी चाहिए । प्राचीन-काल में कलाम का कलाम बहुत प्रसिद्ध था और जगि दाह्मण्य में कलाम के साथ 'कलिक' विशेषतः प्रायः मदा लगा रहता है, उनका दूसरा कारण है । वह यह है कि कलाम की ईजाद पड़ने पड़न कलाम देश में हुई थी । यह मरहमर्त ऐतिहासिक सूचना टीबटिकाल की अहकथा में प्रमाणित में दो है । मैं इसके लिए अपने निम्न भिन्नु राहुन साहूपा,

मुलभ होना भी रहा हो। चार और चांगर की गौवों का उल्लेख हो चुका है। सिन्धु देश अर्थात् सिन्धु नदी का चिचला कौठा— 'प्राधुनिक सिन्धुसागर दोआब और डेराजात'— सदा से घोड़ों की अच्छी नस्ल की खान समझा जाता रहा है। पंजाब के चार और थल तथा चांगर में भेड़ पालने का व्यवसाय भी बड़े महत्त्व का है, वैदिक काल से रावी का कौठा और गान्धार देश अपनी

१. प्राचीन सिन्धु-देश वही था न कि आधुनिक सिंध जो तब सौवीर कहलाता था, दे० रायचौधरी - पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ एन्ड्रेंट इंडिया (प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास), पृ० ३१८। रघुवंश १५, ८७ में भी सिन्धु का यही अर्थ है। कुण्डकपुष्टिसिन्धव जानक (२५४) में यह पाया जाता है कि उत्तरापथ के व्यापारी बनारस में 'सिन्धव' अर्थात् घोड़े बेचने आते थे। फलतः सिन्धु देश उत्तरापथ में था, जब कि आधुनिक सिंध प्राचीन परिभाषा के अनुसार पश्चिम देश में सम्मिलित था, दे० नीचे § २५। नमक को भी संस्कृत में सिन्धव कहते हैं, और नमक की पहाड़ियाँ आधुनिक सिंधुसागर दोआब में हैं। रायचौधरी का यह विचार ठीक नहीं कि सौवीर आधुनिक सिंध का केवल दक्षिणी भाग था, और सिन्धु उत्तरी। उत्तरी सिंध भी सौवीर था, क्योंकि सौवीर की राजधानी रोहक (रीघनिकाय, पार्लोटेव्स सोसाइटी संस्करण, जि० ३, पृ० २०८-९) आधुनिक रोरी है जो उत्तरी सिंध में है। पारसी साम्राज्य में जो 'हिंदु' प्रांत सम्मिलित था, यह भी मेरे विचार में प्राचीन सिन्धु था न कि आधुनिक सिंध। रायचौधरी स्वयं यह सिद्ध करके कि सिन्धु आजकल का सिंध न था, पारसी प्रकरण में यह बात भूल गये हैं क्योंकि यूनानी लेखकों के अनुसार पारसी 'हिंदु' प्रांत के पूरब मरुभूमि थी। यह मरुभूमि राजपूताने के थर के बजाय सिंधुसागर दोआब का थल हो सकता है।

(आधुनिक प्रांग और चारसदा) पच्छिमी गन्धार की राजधानी थी। उरनिषदा के समय (नौवीं-आठवीं शताब्दी ई. पू.) में ही इन कारी और निधिला से गन्धार जाने वाले रास्ते की बात सुनते हैं। वह इतना चतुरा था कि कोई आदमी "गाँव में गाँव पूछता हुआ गन्धार पहुँचा" सकता था।

जानघों के समय (सातवीं, छठी शताब्दी ई. पू.) तक्षशिला मनुष्य भारत का मुख्य विद्या-केन्द्र था, जहाँ भारतवर्ष के सब प्रदेशों में गरीब-प्रसीर राजा-रंक बड़ी संख्या में जैव शिक्षा देने के लिए पहुँचा करने थे। गंगा-काँठे के माय गन्धार देश का व्यापार भी काफ़ी था। गन्धार से गंगा-काँठे तक अनेक निरन्तर लोगों के रुकते-थामा करने का इलाक़ है, जिस से प्रतीत होता है कि वह रास्ता खूब चतुरा और सुगम था। उसी अनेक शताब्दों में उस समय रही प्रतीत होती हैं। रोसाइ और अरुधर की मड़के-आवन (ग्रैंड ट्रंक रोड) उसी रास्ते का नया संस्करण था, और उसी प्रकार काठ-वन का कलहने से रोसाइर तक का बेलमय।

असल में काश्कर उत्तरपश्चिम में पुरख तक शोहरा रास्ता बनता है। रोसाइर में महाजनपुर तक और वहाँ से लखनऊ तक जो मोटी रेलवे-लाइन गई है वह उत्तरी मार्ग को सूचित करती है और उसके दूरे कोश में हिमालय की बाढ़ शृङ्खला की पहाड़ियाँ दिख पड़ती हैं। इन मार्ग की रंग बलीरावाद से दक्षिण मुकाम है केवल पंजाब की राजधानी को देने के लिए और उपन्यास तक फिर अपनी दिशा ठीक कर लेनी है। इन के बाद एक दक्षिणी मार्ग है जो लाहौर से रायबिड़, तिरोहनुर, धर्मिह होकर गेहली जाता है, वहाँ जमना पार कर दोआब में प्रवेश करना और गंगा के दूधे होने प्रमाण आ पहुँचना

है, जहाँ फिर जमना पार, कर गंगा के दक्खिन जारी रहता है।
 लाहौर के उत्तरपश्चिम हिस्से में एक ही मार्ग है। किन्तु उस
 समानान्तर दो दक्खिनी मार्ग अंशतः बन रहे हैं। यदि बम्बई
 सिन्धु पार बुन्दियाँ तक सीधा सम्बन्ध हो और बुन्दियाँ
 सुराष्ट्र तक जो लाइन गई है और सुराष्ट्र में मरगोधा तक जो
 लाइन बन रही है, उसका मरगोधा के आगे मार्गला तक
 सम्बन्ध हो जाय जहाँ से आगे लाहौर तक लाइन है।
 अथवा यदि पंजाब और अफगानिस्तान के मुख्य व्यापार पथ
 गोमल के नीचे हेराइमाइल्लखों का सिन्धुमागर दोआब के
 पार मंग से सीधा सम्बन्ध हो जाय, और मंग में गोजरा उदा
 काठिलका होने हुए भटिहा के करीब तक जो लाइन बन
 है, उसके द्वारा सीधे दिल्ली पले जाय तो यह बम्बई-लाहौर-
 और उसमें जो बड़ कर हेराइमाइल्लखों-देहली-मार्ग है
 दक्खिनी रास्ते को सूचित करेगा। पेशावर और बाली ला
 का कुछ काबुल की तरफ है, हेराइमाइल्लखों-गोमल का
 का गझनी की तरफ रहेगा। लखनऊ के आगे उत्तरी रा
 मंगा के ऊपर उत्तर निगहन पार कर कटिहार पर्यन्तपुर हो
 आसाम तक जा पहुँचना है, जब कि दक्खिनी रास्ता प्र
 पर गंगा पार कर बंगाल के सामने तक, और वहाँ से
 के दक्षिण भागलपुर तक जाकर गंगा के साथ २ कलक
 अथवा बंगाल के सामने बापटना के बड़ आगे स सिन्धुमा
 के द्वारे का सीधे काट कर बम्बई तक निरुद्ध आना है।

इन मुख्य रास्तों के बीच बहुत से रास्ते हैं जो उसी
 दक्खिनी मार्गों की परम्परा विधान हैं। उनमें से जो ल
 लखनऊ और बंगाल में बंगाल का बंगाल पार कर
 उसके पूरव उत्तरी और दक्खिनी रास्तों का परस्पर सम्
 इनका मुख्य नदी बहना के लिये गंगा उसका आग बहना

है, और उसके उत्तर दक्खिन के रास्तों को मिथाने वाले रास्ते
 टीमरो द्वाग ही गंगा को लोप सकते हैं। उसके नीचे केवल एक
 जगह अर्घान नदिया और राजशाही जिलों के बीच माग घाट
 पर गंगा को मुख्य भार पढ़ा पर रेल का पुल है। इसी पारण
 बनारस में उत्तरपूरब निरुत, उत्तर बंगाल और आसाम का
 रास्ता, और विशेष कर इसका गीतलदह के पूरब का आसाम
 वाला दुकानों केवल स्थानीय महत्व का है; इसकी गिनती मुख्य
 राजपथों में नहीं है।

किन्तु बनारस के नीचे गंगा और ब्रह्मपुत्र का जलमार्ग बड़े
 महत्व का है। गंगा में घबसर नक और घाघरा में अयोध्या तक
 छोटे स्टीमर चलते हैं, पटना के नीचे गंगा में बड़े स्टीमर भी
 चलने लगते हैं। ग्वालन्धो में जहाँ गंगा और ब्रह्मपुत्र मिलती हैं,
 इनका भारी नाका है; यहाँ से ऊपर ब्रह्मपुत्र में बड़े दिमूगढ़ तक
 नियम में जाने हैं, और दरसात में आसाम के उत्तरपूरबी छोर
 मदिया तक भी जा सकते हैं। पूरबी बंगाल की सुरमा नदी में
 भी इनका आकायदा आना जाना है।

बंगाल में आसाम जाने को मैदान में के रास्ते केवल दो हैं,
 एक तो उत्तर बंगाल से ब्रह्मपुत्र के उत्तर उत्तर, दूसरे पूरबी बंगाल
 में गारो पहाड़ियों का चकर लगा कर नदी के दक्खिन दक्खिन।
 तीसरा रास्ता पूरब बंगाल से ग्वासी जयन्तिया पहाड़ियों के पूरब
 कपिली और धनसिरी नदियों की घाटियों में से ब्रह्मपुत्र के
 दक्खिन जा निरुता है। किन्तु ब्रह्मपुत्र ऐसी नदी है जिस पर कहीं
 भी कोई पुल नहीं है, इसलिए उसके दाहिने और बायें रास्तों के
 बीच केवल जहाजों में ही आना जाना हो सकता है।

पेशावर-पर्वतीपुर (या टीक टीक कहे तो खैबर-गीतलदह)
 वाले उत्तरी राजपथ में से जगह जगह हिमालय की तरफ शाखा-
 मार्ग गये हैं। नौशेरा से मालाकन्द दर्रे के नीचे दर्गई तक,

पुराने उमाने में पंजाब और सिन्ध की नदियों में भी गंगा-
जै की नदियों की तरह जानाया था और जलमार्ग स्थलमार्गों
अधिक महत्त्व के थे। छठी शताब्दी ई० पू० के अन्त या
सबसे के आरम्भ में प्राग्नि के सम्राट् दारपयदु^१ का एक जल-
मार्ग स्थानीय नावों लेकर बाबुल नदी के संगम से मनुष्य
नदी की यात्रा कर मनुष्य के किनारे किनारे लाल सागर के उत्तर
तक जा पहुँचा था। उसके बाद सिन्दूर जब अपनी चढ़ाई
व्यास नदी में बाधित लौटा तब उस ने पंजाबी नाविकों से
१० नावों का एक घेड़ा तैयार करवा के जेहलम नदी से सिन्ध
मुहाने तक मेनामस्ति उन्नी घेड़े पर यात्रा की थी। मुस्लिम
नेमाविकों ने लिखा है कि महमूद गजनवी की सेना को
जानाया की चढ़ाई से लौटते समय पंजाब की नदियों के काँटों
रहने वाले जाटों ने लूट-भ्रमोटा और तंग किया था; इमीलिन
ररे धरम जब इनको दूर करने के लिए महमूद ने भारतवर्ष पर
अन्तिम चढ़ाई की, तब मुजतान में उसने चौदह सौ नावों का घेड़ा
गर कराया, जिसका मुजायला करने को जाटा ने चार हजार
वें जमा की। मध्यकालीन भारत के इतिहासलेखक लेनपूल
हिन्दू ऐतिहासिकों के इस कथन की मजाह करते हुए कहते हैं—
“जो भी हुआ हो, हम तसल्ली रख सकते हैं कि सिन्ध की
सरती धारा में कभी पाँच हजार नावें जमा न हुई थीं, और
पहाड़ी जातियों प्रायः नाविक लड़ाइयाँ नहीं लड़ा करतीं।”

१. नदीन शायमा स्मृ दास, अंग्रेजी अक्षरों में डेरियम, दारपयदु
। अन्तिम पृष्ठमा के एकचरण को सूचित करता है, यह नाम का
नहीं है।

२. मैट्टीहवत इतिहास (मध्यकालीन भारत) (स्टोरी भाग दि
तन्म—जातियों की कहान—संगीत) , पृ० ५८

नाकेन्द्रों के ग्यान है, इस कारण भी उसका विशेष
मामरिक गौरव है। महमूद गझनवी अपनी पदाइयों में हमेशा
भी रामने आया करता था।

किन्तु दिल्ली में बनारस तक दोनों रामने एका समान महत्त्व
है, बल्कि दक्खिनी का महत्त्व उत्तरी से कुछ अधिक ही है,
क्योंकि दोनों रामने जहाँ एक समान आपाद इलाकों में से
चरते हैं, वहाँ दक्खिनी रामने का दक्खिन भारत में व्यापार
उत्तरी रास्ते के हिमालय वाले व्यापार से अधिक कीमती है।
यदि हिमालय या हिमालय पार के प्रदेशों अर्थात् नेपाल तिब्बत
आदि में से कोई अपनी सामरिक और राजनैतिक शक्ति पदा
न और जापान या तुर्की की तरफ जागरूक हो जाय, तो उत्तरी
मार्ग का सामरिक महत्त्व बहुत ही बढ़ जायगा। हिमालय के
पेरे यदि अपने मशहूर कोयले की अनन्त प्रसुप्त शक्ति का प्रयोग
करने लगे, तो उत्तरी मार्ग व्यापारिक महत्त्व में भी दक्खिनी
की भात कर देगा।

बनारस के बाद उत्तरी राजपथ का महत्त्व दक्खिनी की
अपेक्षा बहुत ही कम रह जाता है, क्योंकि दक्खिनी मार्ग जहाँ

१. भार की शक्ति अर्थात् पानी की भाष बनने समय फैलने की
शक्ति से जय से मनुष्य काम लेने लगा है तब से ईंधन एक अमूल्य
चीज़ हो गई है। बिजली की शक्ति बड़ी मात्रा में पैदा करने की भी
ईंधन चाहिए। इन आविष्कारों के युग में पहला मुख्य ईंधन तो पत्थर
का कोयला ही था। बाद जलप्रपातों से बड़ी चलाकर उससे बिजली
निष्काहने की विधि निकली। उसमें एक बार बंध बना कर प्रपात की
नियमित करने और चक्कियाँ (टर्बाइन) लगाने का जो स्वर्च हो जाता
है, उसके बाद लगभग कुछ भी स्वर्च नहीं रहता, और बहुत ही सस्ती
बिजली मिलती जाना है। जलप्रपातों का मूल्य इस प्रकार कोयले से
कम न रहा, और इसलिए उन्हें अब सफेद कोयला कहा जाता है।

समुद्र और विदेशों का द्वार खोलना है वहाँ उत्तरी आसाम, एकान्त प्रदेश की तरफ ले जाना है। किन्तु चीन की राहें जागृति ज्यों ज्यों हमके पूर्वी छोर से अन्दर की तरफ आगे के पड़ोसी युद्ध नान प्रान्त में पहुँचनी जायगी त्यों त्यों आसाम के भीमान्त का गौरव बढ़ना जायगा। भारतवर्ष और ब्रह्मांडे लोहे की पटरी से परस्पर जोड़ने के लिए सब से सुगम एत आसाम के दक्खिनपूर्व छोर से पनकोई और नामकिङ्क पहाड़ी बीच से लोच कर गौरी की घाटी में जा निकलने से ही होगा यदि भारत और ब्रह्मा इस प्रकार लोहे की लकीर से यभी जु गये तो आसाम-माग का सब तरह का महत्त्व बढ़ जायगा।

किन्तु विद्यमान अवस्थाओं में उत्तर भारत का मुख्य ग पथ वह है जो पशावर न अम्बाना या सहारनपुर से पहुँच दिवना की ओर झुटना और फिर दिल्ली से कलकत्ता निकलना है। इस दृष्टि से हमें नदियों के पुलों के अति तीव्र स्थान नाकेबन्दी की दृष्टि में विशेष गौरव कहें—एक ओर और जेद्दम के बीच नमक की पहाड़ियों वाला टुकड़ा, दूसरे कुदुपुत्र के नगर वाला, और तीसरे विशार और बगाल के की पहाड़ी में स्थित वाला।

उत्तर भारत के मुख्य मैदान के सब स्थल-मार्गों पर उक्त स्थानों के अतिविशेष मुख्य बहावट नदियों की है। प्राचीन की मैदानों और व्यापारियों के लिए तो नदियों की एक बहुत बड़ी थी। हमारे वाक्य में हम बहावट की सब सुगमता बाद राजा मुहम्मद व आम्बाना में है मुहम्मद उत्तर प (कर्गु कर्गु आम्बाना बहावट) का राजा और हमारे राजा (बहावट) का राजा हम राजाओं

जातियों को, जिनमें आधुनिक पठानों के पूर्वज पक्थ लोग भी थे, इपट्टे हराया था । किन्तु मतलज (शुतुद्रि) और व्यास (विपाश्) के संगम पर पहुँच कर उसकी सेना को रुक जाना पड़ा था, जब कि विश्वामित्र श्रेष्ठ के स्तुति करने में वे दोनों नदियाँ अपने उमड़ते प्रवाह को थाम कर इस प्रकार झुक गईं ' जैसे (घड़े को दृढ़) पिलाने के लिए झुक जाती हैं, अथवा पुरुष को आलिंगन करने के लिए कन्या, ' और सुदाम की सेना उनके पार उतर सकी ' । विश्वामित्र और नदियों को वह मनभावना यातचीन श्रेष्ठ संहिता में सुरक्षित है^१ । बाद के लोगों की कविता में नदियों के देवताओं को विमानों की घैसी शक्ति नहीं रही, इसलिए उनका रास्ता हमेशा हिमालय की छाँह में चलता हुआ उथले घाटों पर नदियों को पार करना पसन्द करना था । बाल्म कि रामायण (लगभग ५०० ई० पू०) के पृत्तान्न के अनुसार अयोध्या से जो मन्देशावर भगत के ननिहाल केरुय देश (पंजाब के आधुनिक गुजरात, शाहपुर, जेहलम जिले) को गये थे, उनके रास्ते पर व्यास नदी के किनारे तक से पहाड़ राह दीखते थे । सिकन्दर ने अपनी चढ़ाई में पंजाब की नदियों को हिमालय के निकट ही निकट लाया था । रुकबर को अपने भाई के विरुद्ध ठीक परसात के मौमम में फाबुल पर चढ़ाई करनी पड़ी थी, इसलिए उस ने अपनी फौज को आगरा से अम्याला तक ले जा कर लगातार हिमालय के साथ साथ रखवा था, यहाँ तक कि अमृतसर और लाहौर के मुख्य मार्ग को छोड़ कर गुरदासपुर और स्यालकोट जिलों में से गुजरना उसे पसन्द था ।

१ निरुक्त. २, ७. २५ ।

२ मण्डल ३, सूक्त ३३ ।

३ रामायण २ ६८ १८, ३० परिशिष्ट १ । ७ ६ ।

सैन्य के दाहिने तरफ का रुक-गराची की रेल का टुकड़ा तथा
बेलांचिस्तान की समूची रेल-पद्धति निर्भर है ।✓

अरक और जेहलम के बीच का टुकड़ा उत्तरी राजपथ में
रुक घास नाहेन्द्री की जगह है । दोनों नदियों के बीच सीधे
रास्ते से यहाँ उनना ही अन्तर है जितना फिलौर से जगाधरी
तक सतलज और जमना में । हिमालय की शृंगला ने यहाँ
नमक की पहाड़ियों के रूप में अपनी एक बाँही आगे बढ़ा दी
है, जिमने जेहलम नदी का रास्ता बाँध दिया है । नमक की
पहाड़ियों की यह स्थिति सामरिक दृष्टि से बड़े महत्त्व की है ।
ये पहाड़ियाँ सिन्धुमागर दोआब के उपरले आघाद हिस्से
को नीचे के ऊँड़ हिस्से या थल से अलग कर देती हैं । उनके
ठीक उत्तर ताफ़ हजारा जिला (प्राचीन उरशा) का और
जेहलम के किनारे किनारे करमोर-घाटी का भी रास्ता है । हजारा
जिले से दरद-देश की गिजगित-घाटी, उस के पार पामीर और
पामीर द्वारा थलख-बदख्शा और चीनी तुर्किस्तान को सीधे
रामने गये हैं जिनका उल्लेख हिमालय प्रकरण में किया
जायगा । प्राचीन काल में पामीर और बदख्शा का नाम ही
कम्बोज देश था ^१ और वह भारतवर्ष की सीमा पर एक
शक्तिशाली राष्ट्र था, इसी कारण तब उसका सीधा रास्ता
देने वाले उरशा का भी बड़ा गौरव था । इस प्रकार पूरबी
गान्धार की राजधानी तक्षशिला काबुल कम्बोज और करमोर
तीनों के रास्तों की जड़ पर था, और तीनों को काबू करती थी ।
सिक्न्दर को अभिसार देश । करमोर की दक्षिण पहाड़ियों में
आधुनिक भिम्बर राजौरी पुंच रिगासतों की चिन्ता वहाँ करनी
पड़ी थी और शेरशाह ने वीर गम्खड़ों के उसी देश में एक तरफ

१ दे० नीचे, परिशिष्ट १ (•) ।

तीसरा प्रकरण

विन्ध्यमेखला

६७. पर्वत पानी और प्रदेश — भौगोलिक निरूपण

विन्ध्यमेखला की सीमाओं का निर्देश किया जा चुका है। मंदा और सांन नदियों की घाटियों ने उसे दो फाँकों में बाँट दिया है। राजपूताना-मालवा के पहाड़ तथा भानरेड़, पन्ना और मोरभट्टखलायें उनके उत्तर रह गई हैं, और मातपुड़ा, गवाल-द, महादेव, मेरुल, हजारीबाग, राजमहल भट्टखलायें दक्षिण।

प्राचीन काल में इस समूची पर्वतमाला का विभाग इस प्रकार किया जाना था कि पार्वती और यनाम से लेकर बेनवा तक कुल नदियों का निकाल जिन हिस्से से हुआ है उसे पागियात्र बर्न कहने थे; उसका पूरबी बड़ाव जिनसे कि बेनवा की पूरबी गंगा उमान (दशार्ण) केन और टोंत आदि नदियों का निकाल आ है वह विन्ध्यपर्वत कहलाता था; और उन दोनों के दक्षिण ओर और बेणगंगा से लेकर उड़ीसा की वैतरणी नदी तक जिस चरण धोती है वह श्रुत पर्वत था^१। अर्थात् इस दोहरी पर्वत-

१. वायुपुराण, प्रथम स्कंध, ४५, १०-१०३; विष्णु पुराण, द्वितीय स्कंध, १०-११; मार्कण्डेय पुराण, ५७, १९-२५। इस सन्दर्भ में बहुत उभेद और गोलमाल भी है; वायु का पाठ दूमरों से अधिक विस्तृत और शुद्ध है, विष्णु का बहुत संक्षिप्त। किन्तु वायु पूर्व और पश्चिम पूरबी भाग का नाम श्रुत और दक्षिणी का विन्ध्य है, जब कि विष्णु में उससे उल्टा है, मार्कण्डेय में पूरबी का नाम रुन्ध और

समूची विन्ध्यमेखला के पच्छिम से पूरब गुजरात के
 सिक्ख पांच टुकड़े हैं। पहला राजपूताना, जो चम्बल नदी से
 इन का आहावला के चौगिर्दे का प्रदेश है। थर की मरुभूमि
 का पच्छिमो द्धार है जो उस सिन्ध से अलग करता है। थर
 भी शम्भू है, राजस्थानों में इसी मरुभूमि को डाट कहते हैं,
 (वह डाट भी पच्छिमा राजपूताने या मारवाड़ का अंग है।
 निरी का अहेना काँठा और पूरब तरफ बनाम (रणाणा)
 काँठा भी इसी में सम्मिलित हैं। दूसरा मालवा का पठार,
 पाँच चम्बल (चम्बलवाती) से सिन्ध तक प्रदेश, तथा उसके
 दक्षिण नर्मदा की बिचली घाटी और सावपुड़ा शृङ्खला का
 जो भाग बुध्दानपुर के ऊपर नर। आहावला के निवास
 पत्र विन्ध्यमेखला का सब से पच्छिमी खण्ड मालवा ही है,
 मने शम्भू (मन्दमार), उज्जैन, धार, इन्दौर, भुवनेश्वर,
 जम्मा आदि प्रसिद्ध प्राचीन नगर हैं। राजपूताना और मालवा
 शम्भू में गुजरात है। तौमग प्रदेश बुध्दानवाह है जिसमें
 नर (चम्बलवाती) दमान (दशाणा) और केन (शुक्तिमती)
 काँटे, नर्मदा की उपरली घाटी और पचमदी में अमर-
 कण्ड नर शृङ्खला का हिस्सा सम्मिलित है। उसी पूरबी
 गोमा दौम (नममा) नदी है। उसके पूरब मोन नदी का काँठा,
 जो वह पच्छिम से पूरब बहती है, चम्बलखण्ड है। चम्बलखण्ड
 दक्षिण में वह शृङ्खला के अमरकण्ड पहाड़ की छाँड़ में
 दानदी के उतरले प्रवाह पर छत्तोसगढ़ का नोया पठार है।
 उतरखण्ड-छत्तोसगढ़ को मिला कर हम विन्ध्यमेखला का
 पूरा प्रदेश कहते हैं। उसके पूरब पाग्सनाथ पर्वत तक म्हाड़-
 * प्राचीन दमपुर का स्थावक नाम भावकन शम्भू है। हिन्दु
 तर्फी वाले इसे मंदपोर लिखते थे जिसमें नक्षत्रों में बड़ी न
 है।

मन्त्र त्रयवाक्य कायं मन्त्रो वा स्यात् । एतादृशो वा पद्यो मे
हमे वा कथं वा मेव मैत्रेय भी मन्त्रः नृणां यौगमयरा
ही मन्त्र इति चेत्, तेषां नृणां यौगमयरा इति ।

दमर भारतीय मैदान की तरह विन्ध्यमेखला के भी दक्षिणी भाग में दूरबी भाग में कम पानी पड़ता है और इन में पूर्वी ढलान होते हैं। इसलिए दूरबी भाग में बहुत धने जंगल हैं; और वहाँ सेवी है वहाँ धान होता है। दक्षिणी भाग की सेवी में पेंडा बहुत होते हैं, पर मुख्य जंगल जौ, रावरा, उतर, मकी आदि हैं जिन्हें थोड़े पानी की जरूरत होता है। गङ्गाना और नाला के मैदान में भी इन घाटों की प्रधानता है। गुजरात में इनके साथ साथ पावन भी है। विन्ध्यमेखला के जंगलों अधिकांश "अटविषी" की प्राचीन शिखर में बड़ी प्रमिद्ध रही है, उन अटविषी के सामरिक और राजनैतिक प्रभावों का हम अलग उल्लेख करेंगे। हिन्दु विन्ध्यराष्ट्रों की हम सब वातव्यतिक और जलैविक उरुह का जो जंगलों में पायी जाती है उत्तर भारत के अर्धेक जीवन में विशेष महत्व रहा है। भागनपुर के पड़ोस के शक्तिशालिह के जंगलों में दमर का कोया बड़ी मात्रा में पैदा होता है। गङ्गाना इनो प्रघार अपनी ऊन के लिए प्रमिद्ध है; वहाँ का दमर ऊन की भारी मंडी है।

हिन्दु विष्णुदेवता की मुख्य सन्तति खनित्र रही है।
मुनि के विद्वानों ने सनातन की सब से पुगती रचनाओं में से
एक के कारण उन में अनेक प्रकार के इलाकों और कौनों
परिणत रूप अनेक सन्तति रचाये होंगे। से बने बने रहे हैं।
कालों के सब सन्तति और भूत ब्रह्म के बन्धुत्व के हैं। उन
मन्त्रों के मन्त्र की रचनाएँ कालों के मन्त्र के सन्तति पर की
हैं। विष्णु देवता के सन्तति मन्त्रों के मन्त्र में बने हैं।
मुनि-काल में मन्त्रों के सन्तति मन्त्रों के सन्तति मुनि हैं।

सिन्ध और गुजरात के बीच मारवाड़ का थर और कच्छ का रन पड़ता है। रन 'अरव्य' का अपभ्रंश है, और गुजराती में वह अरव्य अर्थात् जंगल का समानार्थक है। कच्छ का रन पानी बढ़ने पर उथला समुद्र हो जाता है, अन्यथा वह दलदल और उथले पानी में उगा हुआ झाड़ियों का जंगल है। इस प्रकार सिन्ध और गुजरात के बीच का मीठा स्थल-मार्ग बड़ा धाँदका है। पंजाब से गुजरात आने को सिन्ध के यज्ञाय देहली और राज-पूताना या मालवा में से हो कर ही ठीक रास्ता है। तो भी सिन्ध और गुजरात के बीच सेनाओं का आना जाना होता रहा है। पहली शताब्दी ई० पू० में गुजरात और मालवा पर शकों का आक्रमण सिन्ध से ही हुआ था; दूसरी शताब्दी ई० में फिर रुद्रदामा शक के राज्य में सिन्धु-सौवीर सुगप्त्र (पाठियावाड़) और अवन्ति-आकर (मालवा) के साथ सम्मिलित था। उज्जैन के इन शकों के राज्य के उत्तराधिकारी चौथी शताब्दी ई० में गुप्त सम्राट् हो गये; उनके शासन में सुगप्त्र निरचय से था, और राजपूताना भी बीकानेर के करीब तक था, किन्तु सिन्धु-सौवीर के इनकी मत्ता में रहने का कोई प्रमाण नहीं मिला। छठी शताब्दी के शुरू में उज्जैन में गुप्तों का उत्तराधिकारी यशोधर्मा था, और उस की मत्ता सिन्ध में भी थी ऐसा मानने के लिए कुछ प्रमाण हैं^१। उसके बाद प्रभाकरवर्धन और हर्षवर्धन ने यदि सिन्ध जीता भी होगा तो पंजाब की तरफ से। अरब लोगों के सिन्ध

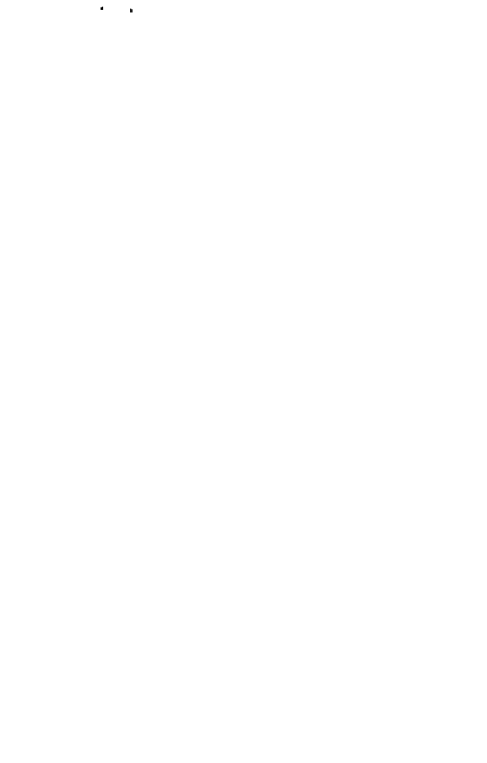
१. जर्नेल प्रोफ़ेसर बिहास ऐण्ड उड्डोमा गिस्चंस मार्टे (भागे संकेत-३० वि० भा० १२० सो०) १६२०, पृ० ३२७-३२८।

२. हर्षवर्धन, पृ० १२०, प्रभाकरवर्धन 'सिन्धु तटवर्ग'; पृ० ६०-६१, हर्षवर्धन के विषय में—अथ पुरुषोत्तमेन सिन्धुगतं प्रमथ्य नन्दी-राक्षसीया हृता। इस रूपकाल में भी सिन्धु का अर्थ देगजात था या सिन्धु सो कहना कठिन है, शायद देगजात ही था।

उक्त मय दिग्दर्शन का नक्शे नतीजा यह निकलता है कि
 विन्ध्य की तरफ से गुजरात पर घढ़ाई करना सम्भव न होने
 हुए भी बहुत कठिन है। राजपूताना और मालवा को भली प्रकार
 दबियाये बिना उत्तर भारत की कोई शक्ति गुजरात पर हाथ नहीं
 बढ़ा सकती। उत्तर भारत के विस्तार और उपजाऊपन के
 कारण उस में साम्राज्य सदा स्थापित होते रहे हैं, उन साम्राज्यों
 को अपने दक्खिनी छोर की रक्षा के लिए विन्ध्यमेखला के घड़े
 जैसा पर सदा अधिहार करना पड़ता रहा है, और जब जब उन
 हाथ में राजपूताना या मालवा आ जाना रहा तब तब अपने
 सामुद्रिक व्यापार और उपजाऊ भूमि के कारण धनों गुजरात
 में दखल करने का प्रलोभन राकता उनके लिए असम्भव होता
 था। किन्तु तो भी गुजरात उनके लिए सदा दूर का प्रान्त होता
 था। वह उत्तर भारत के साम्राज्य में सब से पीछे सम्मिलित
 होने और साम्राज्य के टूटने के समय सब से पहले अलग होने
 वाला प्रान्त होता था। मौर्य, गुप्त और वर्धन साम्राज्यों के
 विनाश की कहानी पूर्ण नहीं है, पर इतना बात उनमें स्पष्ट दीख
 पड़ती है। दसवीं शताब्दी में कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य
 ने सब से पहले अलग होने वाला प्रान्त गुजरात ही था।
 ६१६ ई० में राष्ट्रकूट राजा इन्द्र ने कन्नौज के महीपाल
 को हराया, और उसके २२-२६ साल बाद हम गुजरात के
 तामक मूलराज सोलंकी को स्वतंत्र हुआ पाते हैं। यही कहानी
 फिर 'पठान' और मुसल साम्राज्यों के इतिहास में दोहराई गई।

किन्तु उत्तर की तरह दक्खिन के विजेताओं के लिए भी
 गुजरात मुश्किल रहा है। सातवीं शताब्दी में सोलंकीयों^१, फिर

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका १, पृ० २०७ आदि। धर्मेय भोस्ला जी
 ने इतिहास के ये प्रो छटे छटे टुकड़े इकट्ठे किये हैं उनसे सोलंकीयों के
 दक्खिन में गुजरात जाने का सामान्य घटन स्पष्ट सिद्ध होती है



एकियन से तिरहुत-मगह जाने का जो रास्ता दिया है वह
 दावरी-तट के पैठन से माटिघमती, उज्जैन, गोनर्द और बिदिशा
 कर, पौषाम्बी पहुँचता था^१। मौर्य सम्राटों के समय फिर
 उज्जैन पच्छिमी प्रान्तों की राजधानी थी। उसके बाद शुंग सम्राटों
 के समय तो पाटलिपुत्र और बिदिशा दोनों साम्राज्य की राजधा-
 नीयों थीं, और शुंग राजाओं के पास गान्धार के यूनानी राज्यों
 से दून बिदिशा में हाँ आते थे। ईसा की पहली शताब्दी में
 लगभग ८० ई०) जिस अज्ञातनामा सूक्ष्मदर्शी रोमन व्यापारी
 'एरथू मागर की परिग्रमा'^२ नाम से भारत के पच्छिमी समुद्र-
 तट के समूचे व्यापार का विस्तृत वृत्तान्त लिखा है, उसके समय
 भी मोरारा^३ और भरुकच्छ में व्यापार की धारा उज्जैन होकर
 उत्तर भारत तक पहुँचती थी और तो और, बालिनाम अपने
 तट को भी बिरही यत्त का सन्देश ले जाने के लिए दशार्ण देश
 (आधुनिक ढमान, पूर्वी मालवा), घेन्नवती (चेतवा) नदी, उज्जयिनी
 और दशपुर (दामोद, मन्दमोर) का ही रास्ता घतलाते हैं।

मुसलिम जमाने में तो मालवा का रास्ता प्रायः उत्तर-दक्खिन
 के बीच एकमात्र रास्ता रहा है। बुन्देलखण्ड—निचली उपत्यका
 को छोड़ कर—मुसलमानों के हाथ में बहुत कम रहा और पच्छिम
 राजपूताना केवल अलाउद्दीन खिलजी के समय "पठान"
 बादशाहों तथा जहांगीर-शाहजहाँ के समय मराठों के पूरी तरह
 अधीन हुआ। "पठान" बादशाहों के हाथ उड़ीसा का तट वाला
 रास्ता भी न था। फलतः राजपूताना और बुन्देलखण्ड के बीच

१. सुतनिपात गाथा १००—१०३।

२. 'पेरिप्लस ओफ दि एंथियन मी' नाम से स्त्रैफ ने उसका
 अंग्रेजी अनुवाद किया है।

३. अथवा पूर्णारक, कंकण का एक पुराना बन्दरगाह आजकल
 डाना ज़िले के बसई तालुका में।

चौथा प्रकरण

दक्खिन

§ १०. पर्वत पानी और प्रदेश — भौगोलिक निरूपण

विन्ध्यमेखला और दक्खिन भारत को अलग करने वाली या का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। उस के दक्खिन का कोना देश दक्खिन या दक्खिन भारत है। यह विभुत एक दाढ़ी पठार है, जिस का आधार विन्ध्यमेखला का श्रुत पर्वत, और दो भुजायें पूरबी तथा पच्छिमी घाट। पच्छिमी घाट की पुगना नाम सहाद्रि है। उन का दीवार पच्छिमी समुद्र के साथ साथ लगातार चली गई, और उसके तट से एकाएक पर उठी है। उस की अधित्यका का उत्तरी हिस्से में गि, मध्य में मावल और दक्खिनी हिस्से में मल्लाड कहते हैं। वह अधित्यका पूरब तरफ धीरे धीरे टनने हुए अपने अपनी कई बाहें आगे बढ़ा दी हैं जो पूरब जाते हुए गातार टनतीं तुलतीं तथा अन्न में नदियों की घाटियों में लतीं गई हैं। सहाद्रि के इस धीरे धीरे पूरब तरफ टनने से दक्खिन भारत का पठार बना है, और इसी कारण उस पठार की सब नदियों का प्रवाह पूरबी समुद्र की तरफ है। उस दाढ़ी के तुलने पहाड़ी मैदान को महाराष्ट्र लोग "देश" कहते हैं। पच्छिमी घाट की परम्परा जो उस पठार को पूरब तरफ जाने हुए बीच बीच में टूटी है, नदियों ने अपनी घाटियां उस के बीचों बीच काट कर बना रखी हैं। सहाद्रि के पच्छिम जो छोटी टी नदियां एकदम ऊँचे से गिरती हैं, उन के खादर से

की एक बौंध सीधे पुरब दक्षिण के दक्षिण तक बली गई है। वही गालना पहाड़ियाँ हैं। मुन्हेर के बीच दक्षिण समशुद्ध पड़ाई है, जहाँ से फिर एक और बौंध पुरब तरफ बड़ी है। वे बन्दोर की पहाड़ियों या माउन्टेन पहाड़ियों हैं। कुछ दूर पूरब जाकर वे रुक गई हैं, किन्तु थोड़े कबजान के बाद फिर उठी हैं और वह उठते उठते ही एक अत्यन्त प्रसिद्ध बौंधी—कजिहा मुंखला—के कारन को सूचित करता है। कजिहा पहाड़ियों की मुख्य शृंखला तानी की धारा पूर्वा के पानी की मोहावरी की धारा की पूर्वा पेलगंगा, पुन सादे के पानी से बँटती हुई वर्षा नदी के लानने पवतनात तक बली गई है। इनसे फिर कई बौंधियाँ दक्षिणपूरब बहा हो हैं। एक यह है जो बेलुह से दोलानाद (देवगिरी) औरंगाबाद और गालना के उत्तर उत्तर मोहावरी-दुबन की पूर्वा के बीच उसके दक्षिण मुड़ने तक बली गई है। दूसरी पूर्वा और पेलगंगा के बीच से दक्षिणपूरब बड़ी और मन्हेर के उत्तर से होते हुए निर्मल तक बली गई है; यही निर्मल शृंखला कहलाती है। तीसरी और पूरब पेलगंगा और पुन के बीच शुरू हो कर पेलगंगा के उत्तरी मोड़ के बाद उसके पुर मोहावरी और बेलगंगा के संगम तक पहुँच गई है। इनका कजिहा तिला—पेलगंगा और मोहावरी के बीच का—भी माउन्त कहलाता है, और वह कजिहा मुंखला का सह से पूरबी बारा है। कजिहा मुंखला इन प्रकार मोहावरी के उत्तर उत्तर बड़ी और बेलगंगा के बौंधे तक पहुँचती है।

मोहावरी के बौंधे जलिक और बलवान के दक्षिण जिनक पुरब से मन्हेर के तक और जिनके बौंधी मोहावरी और भीमा के बौंधे बेलगंगा तक बड़ी हैं। कजिहा मुंखला के बाद वह

१. गालना नदी = गालना नदी = गालना नदी = गालना नदी = गालना नदी ।

२. बेलगंगा नदी = बेलगंगा नदी = बेलगंगा नदी ।

दो शाखाओं में फट गई है, जिनमें में एक मजीरा के बाँये और दूसरी दाहिने बली गई है। मजीरा के उत्तर वाली बालाघाट शृंगना कहलाती है, और वह आगे जा कर फिर दो शाखाओं में फट गई है, जो दोनों नान्देड़ के दक्खिन मोन में पहुँच कर समाप्त हो गई हैं। मजीरा के दाहिने आ बाँध बली गई है वह तुलजापुर और बड़वाली होने हुए मुखर्खा और बिहर के बीच हैराघाट गोलहृवा के पठार में जा जुड़ी है। मूर्मा नदी की घाटी का वह प्रसिद्ध पठार गादावरी और कृष्णा के तथा पूर्वी और पश्चिमी घाट के ठीक बीच बहता है। उसे पश्चिमी घाट की उक्त बाड़ी का बड़ाव माना जाय या पूर्वी घाट की शृंगना का एक अंग, या दोनों में स्वतन्त्र एक केन्द्रिय पठार, या कहना कठिन है। उसमें उन्नापूर्वी छोर पर बागमल है।

पूर्वा के दक्खिन सीमा और कृष्णा के बीच सछाट्टि की जो बाँधी गई है, वह भी देखगिरि अत्रिटा शृंगना और अहमदनगर-बड़वाली शृंगना की तरह प्रसिद्ध है। उसकी रेखा आरम्भ में सीरा के दामों बाड़ू दोहरी बली गई है, दक्खिन वाली महादेव पराईया कहलाती है। वनही मुख्य शृंगना बीजापुर के दक्खिन होने हुए कृष्णा घाटी के बाँये बाये भीमा-कृष्णा-संगम तक बली गई है। यह स्पष्ट है कि अत्रिटा शृंगना ने सछाट्टि के साथ जैसा बॉग बनाया है, अहमदनगर बाँधी बाँधी का बोल उस में अत्रिटा नुईया और कृष्णा घाटी को बन्द करने वाली इस बाँधी का और भी नुईया है। इसी कारण दामवी कृष्णा घाटी एक तरह में बिसतृप्त बन्द भी है, और हैराघाट और धमा पर्वतों की तरह मुख और केस नदी

१. दक्खिनमुखी ३ महानदी और प्रमुख नदियों के साथ ही नदी की धारा, जो नमन की बहती है बाँधों का अंग है बागमल

पई। इमोजेद उसका मुख्य अधिक उत्तर दक्खिन है। नीचे जा कर वह तुल भी पानी, यदि सहादि ने पच्छिम बड़ी हुई और बाँहियों को दाहिनी तरफ से भी न दबाये हुए होंगी। इस प्रकार की एक योंही मावन्दवाडी के उत्तरपूर्व से घटभमा के बाँये बाँये गढ़ शिंलाड होने हुए यागलकोट के मानने तक चली गई है। दूसरी फिर घटभमा और नलभमा के बीच बेलगान से गोहाह होने हुए बदामों गई है। और तीसरी नलभमा और बरदानुंगभद्रा के बीच धारवाड और हुगली से गढ़ा तक पहुँच कर तीन शाखाओं ने फट गई है, जिन में से एक उत्तरपूर्व मुद्गल रायचूर होकर कृष्ण-उड तक, दूसरी दक्खिन-पूर्व विजयनगर के मानने गगावनी तक और तीसरी तीसरे दक्खिन तुंगभद्रा के तट तक चली गई है।

बराह के दक्खिन पच्छिमी और पूर्वी घाट एक दूसरे के नददीह जाने और अन्य में नीलगिरि पर मिल कर एक हो गये हैं। इन दोनों के नददीह होने से दोनों के बीच मैसूर का ऊँचा अन्तःप्रवाल पठार बन गया है, जिस के पानी को तुंगभद्रा और वेदवती की अनेक धारयाँ उत्तर तरफ से जाती हैं, और कावेरी पूर्वी भाँव को काट कर पूरब तरफ।

पूर्वी घाट-शृङ्खला का उत्तरी छोर आधुनिक परिभाषा के अनुसार सुवलरिया और बैनरली के बीच नयूरभंज के पहाड़ तथा बैनरली-आइरली के बीच केंदूर के पहाड़ हैं। प्राचीन परिभाषा में बैनरली का साथ कुछ पर्वत में गिना जाता था, जिसका यह अर्थ है कि नयूरभंज-केंदूर की पहाड़ियों कुछ पर्वत का अंश मानी जाती थीं। योंही के पठार के साथ उन्हें एक पहाड़ी गर्दन जोड़नी भी है। आजकल उन्हें विन्ध्यनेत्रश की अपेक्षा दक्खिन भारत में गिना अधिक ठीक दीखता है।

महानदी गोदावरी और वेणुगंगा के बीच का पूरबी घाट का बड़ा अंग प्राचीन काल में महेन्द्रगिरि कहलाता था. और अब भी उस में उस नाम का पर्वत है । महेन्द्र में वेदा होने वाली नदियों में अप्सिदुल्या, लागूलना और बराभरा की गिनती की जाती थी । गताम शिले ॥ में होकर चिलिका द्वीप के दक्षिण ओर नदी समुद्र में गिरती है, उस का नाम अब भी अप्सिदुल्या है, बलितपट्टम त्रिम के मुहाने पर है वह अब भी बराभरा कहलाता है, और शिवारोल त्रिम के मुहाने पर है वह लंगलिया । महानदी और गोदावरी के पानी को बाँटने में महेन्द्र पर्वत की सहायता छत्तीसगढ़ पठार करता है । उस पठार का दक्षिणी किनारा, त्रिम के बोंकर के पहाड़ सूचित करते हैं, इन्द्रावती और रावरी के पानी का महानदी की मुख्य धारा के पानी से अलग करता है और पच्छिमी किनारा उसकी दूसरी धारा शिवनाथ के स्रोतों तथा वेणुगंगा के स्रोतों के बीच पड़ता है । आगे जा कर वह मेकल पर्वत से जुड़ गया है, और वेणुगंगा के उत्तरी स्रोतों तथा नर्मदा के स्रोतों को शिवनाथ के उत्तरी स्रोतों से मेकल पर्वत ही बाँटता है । छत्तीसगढ़ पठार इस प्रकार मेकल और महेन्द्र पर्वत को अर्थात् विन्ध्यनेसला और पूरबी घाट को परस्पर जोड़ता है ।

महेन्द्र पर्वत के बाद पूरबी घाट की परम्परा फिर कृष्णा के दक्षिण उठी है । वही उसका मुख्य पर्वत नालमलई है, जिसके समानान्तर पूरव बेल्लिकोडा शृङ्खला उत्तरी पैरणार के दक्षिण नगरी पहाड़ियों तक चली गई है । नालमलई का पैरणार के दक्षिण बड़ाव बालकोडा पहाड़िया हैं । नालमलई-पालकोडा को यदि धनुष की ज्या मानें तो उसके साथ पच्छिम तरफ परमाला

से मलय होते हुए हम महा की तरफ घूम जाते हैं। चौथे पर्वत शक्तिमान् की निरिखत शिनाख्त आज तक नहीं हुई, किन्तु मेरे विचार में वह गोलकुण्डा का पठार है। क्योंकि इन सातों पर्वतों के नाम एक पश्चिमा के प्रम में हैं। सहाद्रि के उत्तरी छोर से पूरव लगानार अक्ष पर्वत हैं। उसके पूरवी छोर से फिर उत्तर घूम कर प्रम से विन्ध्य और पारियात्र। ये सातों पर्वत इस प्रकार भारतवर्ष के अन्दर के "कुल-पर्वत" हैं, और हिमालय और अन्य "मर्यादा-पर्वतों" में भिन्न हैं।

पोलमंडल तट की तीन स्पष्ट नोकें दक्खिन-समुद्र में बड़ी हुई हैं। उनमें से बीच की रामेश्वरम् और धनुषकोटि की हैं, जो आगे सेतुपन्थ की पट्टानो द्वारा सिंदलद्वीप या लंबा में बहुत कुछ जुड़ी हुई हैं। सिंदल द्वीप भी भारतवर्ष में सम्मिलित है। इसका उत्तरी आधे से कुछ कम हिस्सा मैदान है, और दक्खिनी आधे में पौष में समनलबन्द (समन्तकूट) और विद्रुह तलागल^१ पहाड़ तथा उनके पार्श्व तरफ टाल के बाद मैदान है। इन पहाड़ों से जो नदियाँ उतरती हैं उनमें से उतर जाने वाली महाबलिंग (कुरुगलिंग) मुख्य है, क्योंकि उत्तर की तरफ ही गुला मैदान है।

दक्खिन भारत के पर्वतों और पत्तियों की स्थिति समझने के बाद अब हम इसका प्रदेश विभाग कर सकते हैं। द्वादश भौगोलिक और भौतिक दृष्टि में इस के निम्नलिखित विभाग चलन चलन होकर पड़ते हैं—(१) कोरल-बेरल-कूट, (२) बलिया-

१. ई. ए. ए. १ (१०)।

२. कुरुगलिंग और कोरल-बेरल-कूट का अन्तर दक्खिन-समुद्र ५. ११, १-१० में गत है।

३. कुरुगलिंग का अन्तर दक्खिन-समुद्र ५. ११, १-१० में गत है।

घोलमण्डल-तट जिम में महानदी का मुहाना और गोदावरी-कृष्णा का मुहाना भी सम्मिलित है, (३) सिंहाल के तट का मैदान, (४) सिंहाल की अधित्यका, (५) मलय अधित्यका अर्थात् एनामनडं आनमनडं पर्वतों की अधित्यका, (६) मैसूर-पठार, (७) श्रीरौत अधित्यका और गोलकुण्डा-पठार, (८) सद्याद्रि की अधित्यका, जिम में गोदावरी भीमा कृष्णा की उपरली घाटियां सम्मिलित हैं, (९) महेन्द्रगिरि की अधित्यका जिस में इन्द्रावती रावरी के बीच का दोमाच बन्दर भी सम्मिलित है, (१०) कृष्णा-तुंगभद्रा का विचला कौठा जो मैसूर-अधित्यका श्रीरौत-गोल-कुण्डा-अधित्यका और सद्याद्रि अधित्यका के बीच घिरा हुआ है (११) पेणुगंगा-वर्ग-वेणुगंगा-कौठे, गोदावरी के विपरीत कौठे सहित, (१२) तारी का विपरीत कौठा अथवा खानदेश, (१३) महानदी का उपरला कौठा । इन में से तीन समुद्र-तट के मैदान, छ' अधित्यकायें और चार उनके बीच घिरे 'देरा' या मैदान हैं ।

भौगोलिक और ज्ञाति-विषयक स्थिति को देखते हुए फिर इन्हीं प्रदेशों का छ' भागों में बँटबाग होना है । कृष्णा-तुंगभद्रा का विचला कौठा दक्खिन भारत के दो खण्ड हिस्से करता है । उस के उत्तर के हिस्से में सद्याद्रि की अधित्यका दक्खिम तरफ गोलकुण्डा की अधित्यका बीच में तथा महेन्द्रगिरि की अधित्यका उत्तरपूर्व छोर पर है । सद्याद्रि की अधित्यका के पुरानी ढाल का पड़ाव ही पेणुगंगा वेणुगंगा और मध्य गोदावरी के कौठे हैं, और उस अधित्यका का उत्तर तरफ ढाल पश्चा, पूर्ण और तारी के कौठे अर्थात् बराह खानदेश हैं । बोकल भी उस की दक्खिमी किनारी है । वह अधित्यका अपनी ढाल के इन प्रदेशों सहित महाखण्ड है जिस की पुरानी सोमा गोदावरी और महानदी का उत्तरविभाजक है । महाखण्ड बाल अपने

जनी हैं। और जिनके व्यापार के इतिहास का संसार के आर्थिक इतिहास में आरम्भ से आज तक प्रमुख स्थान रहा है, यहां तक कि अनेक जानियों के इतिहास की प्रगति का रास्ता कई बार उसी व्यापार ने निश्चित किया है। चन्दन की उपज के लिए मलयाट्टि महा मे प्रसिद्ध रहा है। काली मिरच, पिपली लौंग, इलायची आदि मसाले इसमें पड़ोम में और भागतीय महासागर के द्वीपों और प्रदेशों में महा मे उपजते हैं। ये वस्तुएँ उन्हीं देशों में उपज सकती हैं जो भूमध्यरेखा के निकट और समुद्र से घिरे हों, और इस प्रकार जिनमें सर्दी गर्मी का विशेष अन्तर न होता हो। अत्यन्त प्राचीन काल में इन वस्तुओं की खातिर संसार के सभी सभ्य देशों के साथ दक्षिण भारत का व्यापार-सम्बन्ध बना रहा है। आजकल सभ्य संसार के जीवन की एक और आवश्यक वस्तु भी है जिसका भारतीय महासागर के प्रदेशों की विशेष उपज में उल्लेख करना चाहिए। वह है रबर। रबर और कौलाद पर आधुनिक जगत का समान गतायान निर्भर है। और कौलाद के पक्षों जहाँ कौलाद की जमाई हुई पट्टियों पर ही लुढ़क सकते हैं, वहाँ रबर के पक्षों साधारण रान्तों पर उहाँ नहाँ दौड़ सकते हैं, इसी कारण आधुनिक युद्ध में उनका महत्त्व कौलाद में भी अधिक है, क्योंकि लोह की पट्टियों की दुरन्त उखाड़ फेंके तो फिर उन्हें जमाने में समय लगना है। रबर के अन्य सैकड़ों उपयोग भी हैं। जिस पेड़ के दूध को जमा कर वह तैयार होता है वह यह पीपल गूबर और अंजोर का सेली का है। पटले पड़ल वह दक्षिण अमरीका के ब्रासील देश में ही उपजता था और वहाँ की सरकार ने उसका दौज या पौद बाहर ले जाना बिल्कुल बन्द कर रक्खा था। पिछली शताब्दी ई० के मित्तले हिस्से में एक चतुर अंग्रेज नावी ने जिसे लंदन के राजी वनस्पतिशास्त्रीय बगीचे की तरफ से भेजा गया था, चोरी चोरी उसकी पौद इकट्ठी

का पठार भारतीय मैदान उनके सामने विलकुल कंगाल
 रात में उसकी प्रसिद्धि रही है। गोलकुण्डा की
 किसी उमाने में संसार भर में प्रसिद्ध थी। बेंगल
 कोल्हार की सोने की खानें आजकल भी काम
 दक्षिण के पहाड़ों की भूगर्भ-रचना बहुत ही प्राचीन होने
 अन्य अनेक प्रकार के खनिज उनमें हैं जो हिमालय में
 हैं। उनकी 'सफेद कोयले' की सम्पत्ति भी कम नहीं
 और दम्बई के बीच काले की गुश्वाओं के पास के प्रपातों के
 के पड़ोस की रेलगाड़ियों के लिए बिजली निकाली जाती है।
 शिवसमुद्रम् के प्रपातों की बिजली से ही कोल्हार की खानों
 सब कारखाने चलते तथा मैसूर और बेंगलूर की बिजली नि-
 है। भारतवर्ष के प्राचीन अर्थशास्त्री कौटिल्य ने स्थल की खानों
 के साथ जल की खानों की भी गिनती की है। उसके समय
 (३२५ ई० पू०) पहले से पाण्ड्य देश (द्रविड देश की अन्ति-
 दक्षिणों नोक, मदुरा विरुनेवली दिले) और लंका के समुद्र
 शंख, मोती और मृगे निकाले जाते थे, और आज तक भी
 निकाले जाते हैं।

भारतवर्ष की भावी व्यावसायिक उन्नति में विन्ध्यमाला और
 दक्षिण-पठार की खनिज सम्पत्ति विशेष महत्व होगी।

§ १२. पयनद्विती और ऐतिहासिक पर्यालोचन।

विन्ध्यमाला के जिन भागों का हम पहले ज्ञेय कर चुके हैं
 वे उत्तर भारत की दक्षिण में जोड़ते हैं। इसीलिए उनका दक्षिणी
 और दक्षिण भारत में बहुत महत्व होता है। दक्षिण के अनेक
 १ अर्थात् १, ६-सन्धि का स्थान।

...सकता है। इन्होंने उसे चकरा दब जाता है।
 काल से दक्षिण भारत के उत्तर-पश्चिमी छोर को व्या
 रास्ता इन्हीं प्रकार काटना रहा है। नागरा या शूर्पारक
 काल में एक प्रसिद्ध 'वीर्य' (वन्दरगाह) रहा है,
 उसने नक व्यापारियों के मार्ग (कारिजे) इसी रास्ते
 जाते थे। नागिक के पड़ोस में नह्याद्रि के नानापाट में
 घाटन और हज्र राजाओं के अभिलेख मिले हैं, जिस से
 होता है कि नानापाट उन समय चलते रास्ते पर था; रा
 प्राचीन रास्ता वहीं नह्याद्रि को लांघना था। शिवाजी के
 सम्भावों के समय बादशाही औजें उन के पड़ोस के यत्न
 से जाया करती थी, और आजकल जलगाँव में दण्ड वरु रें
 का भी ठीक वही रास्ता है। किन्तु बड़ोदा-धन्वई वाले दुहड़े
 की तरह वह भी दक्षिण भारत के केवल एक छोर में
 गुजरता है।

प्रयाग से हुन्नेलगरड के आन्ध्र नर्मदा की उपरती घाटी
 (उपरतपुर) होकर बेरगंगा के उपरले काँटे (नागपुर) में जो
 विन्ध्य-मार्ग उत्पन्न है, वह आगे गादावरी-काँटे के मायपुर्वी नद
 पर निकलने हुए दक्षिण के एक बड़े सिनारे को छूट लेता है।
 गोदावरी कुप्पा-काँटों के आन्ध्र प्रदेश में दूनगी-नीमगी राजाओं
 के इरादों के अन्तर्गत के अभिलेख पाये गये हैं। निम्न से
 वे इरादों के अन्तर्गत आने वाले हैं। निम्न से
 देखा नक आये होंगे किन्तु इन गाले के सिनारे पर नेकल
 और दन्व के जल में 'धरे पड़े' हैं, इन्हीं कारण वह नदी
 बनना पकटा नहीं रहा।

1. नागिक के पड़ोस में नह्याद्रि के नानापाट में
 घाटन और हज्र राजाओं के अभिलेख मिले हैं, जिस से

पूरबी नद के साथ साथ आने वाले जिस रास्ते का हम विन्ध्य भागों के प्रसंग में उल्लेख कर आये हैं, वह एक बड़ा राजपथ है, और उसे विन्ध्य-भागों के बजाय दक्खिन भारत के भागों में ही गिनना चाहिये। यह भारतवर्ष के सब से अधिक चलने राजपथों में से एक है। उस रास्ते जाने वाली सेनाओं ने जो कई बार भारतवर्ष का इतिहास बनाया है, उसका उल्लेख पीछे कर चुके हैं। आजकल उस रास्ते के साथ साथ तट पर एक लम्बी नहर भी खली गई है, जिसके अनेक अंशों में स्टीमर चल सकते हैं।

पूरबी तट के उस रास्ते की तरह दक्खिन भारत के उत्तरी तट के रास्ते का भी पहले उल्लेख कर चुके हैं। यह बड़ाला है जो विन्ध्यमैथिला और दक्खिन की विभाजक रेखा में से सूरत से कलकत्ता तक गया है।

अब हम दक्खिन भारत के खास अपने, उसके अन्दर के, उन भागों की ओर ध्यान दे सकते हैं जिनमें सेनाओं, व्यापारियों, धर्मनिवेश-स्वायत्तों और मध्यता के प्रवाह बढ़ते रहे हैं। वे रास्ते उसकी चौड़ाई के कारण उसकी नदियों की दिशा में हैं। सबसे पहला वह जिसे मनमाड से मसुलीपट्टम तक का आमकल का रैनगय सूचित करना है। दूसरा, ऐसी प्रकार, पूना से कांडी-वाम्; तीसरा गोधा में तजोर-नागपट्टणम्^१; चौथा, कालीकट से रामेश्वरम्; और पाँचवां कोल्लम से तुनकुटि^२। इनमें से पाँचवां तो एक छोटा सा स्थानीय मार्ग है, हमने उसकी गिनती बाकी चार के साथ केवल इस कारण की है कि वह भी वन्दी की दिशा में है। चौथा जो राजपाट होकर गुजरता है, सदा

१. विगादा न छोड़ी कर-नागपट्टम्।

२. तुनगाडी कर-तुनकुटि।

के दाहिने छोर के साथ सटी हुई दक्खिनमुख चली गई है। लेह के चौगिर्द प्रदेश लद्दाख कहलाता है, इसलिए इस शृङ्खला का नाम भी आजकल के भूगोलवेत्ताओं ने लद्दाख-शृङ्खला रक्खा है। हानले के उत्तर जहाँ सिन्ध नदी जरा दूर पच्छिम-दक्खिन बही है वहाँ उसे पार कर वह फिर सिन्ध के बायें चली आई है, और आगे गारतंग के बायें बायें सतलज घाटी तक जा पहुँची है। सतलज को राप्ता देकर राखस ताल के दक्खिन फिर उस की एक दो छोटी चोटियाँ उठी हैं, और मान मरोवर के दक्खिन गुरला मान्धाता भी उसी के ताँवे में है। उसके आगे वही शृङ्खला ब्रह्मपुत्र के बायें बायें कांचनजंघा के उत्तर तक लगा-तार चली आकर चुमलारी चोटी पर हिमालय में आ मिली है। उसके एक तरफ ब्रह्मपुत्र है, और दूसरी तरफ घायरा गंडक और कोसी के मूल स्रोत जो मग्न उसी में हैं।

हिमालय की गर्म-शृङ्खला और लद्दाख-शृङ्खला के बीचो-बीच खड्गहर नदी से कर्णाली नदी (घायरा को उपरली घारा) तक चोटियों की एक और परम्परा भी हिमालय की पीठ पीछे चली गई है, जिसे खड्गहर शृङ्खला कहते हैं। गुरला मान्धाता के ठीक दक्खिन कर्णाली के दाहिने हिमालय की पीठ से फट कर काली की तीनों घाराओं—काली, धौली गंगा और गौरी गंगा—के स्रोतों को कर्णाली और सतलज के स्रोतों से, तथा खलखनन्दा की दो मूल घाराओं—धौलीगंगा और विष्णुगंगा—और भागोरथी की उपरली घारा जलहा के पानी को सतलज के पानी में चोटनी हुई शिपछी दर पर वह सतलज घाटी के ऊपर जा पहुँची है। विष्णुगंगा के पूरव सुप्रसिद्ध कामेत पहाड़ उमो में है। सतलज के पच्छिम सिन्धी नदी और सिन्ध में जाने वाला हानले नदी के बीच वही उत्तविनाजक है। सिन्ध की पूरबी घारा परं के बायें

घाटी के उत्तर बराबर चली गई है । उसे कैलारा शृंखला का ही पूरबी बढ़ाव कहना चाहिए ।

कैलारा-शृंखला के भी उत्तर, किन्तु केवल उसके पच्छिमी भाग के बराबर, कारकोरम-शृंखला है, जिसमें संसार के सब से भारी गल^१ रहते हैं । हुंसा नदी के उपरले प्रवाह के दाहिने तरफ शुरू होकर उसे बीच में रास्ता देते हुए हुंसा के दाहिने से वह थोड़े दक्खिन झुकाव के साथ पूरब बढ़ कर कैलारा-शृंखला को जा लगी है । वहीं बमका मय से बड़ा तथा संसार भर में दूसरे दर्जे का पहाड़ पंगोरी (गौडविन चौम्टेन) है । पंगोरी के आगे वह एक लहर में, पहले दक्खिन और फिर उत्तर झुकी, नुबरा और शियोऊ का ररकम दरिया में पानी बाँटती हुई पूरब गई है । शियोऊ घाटी के पूरबी छोर में पंगोऊ के पूरब की न्यऊ मील की सीप में कुछ दक्खिन झुक कर फिर वह लगातार लगभग पूरब चली गई, और अन्त में ब्रह्मपुत्र के सोन के करीब दो सौ मील उत्तर तिब्बत के पाद-थर की सोने की खानों के पड़ोस में टल गई है ।

बहु माने मैदान; और क्योंकि तिब्बत का मैदान पहाड़ के ऊपर हो है, इसलिए बड़ का ठीक अर्थ है पठार । पाद-थर तिब्बत का मुख्य भाग है, और वह एक सपाट वृक्षहीन, ऊँड़ड़ पठार है । ब्रह्मपुत्र-घाटी के उत्तरी छोर ज्यार्तु कैलारा और मेनदिन-शृंखलाओं के उत्तर और क्युनलुन-शृंखला के दक्खिन, निम्न व सोने की सीप में शुरू कर आस्तान के पूर्वी छोर की सीप के उत्तर आगे पूरब कोलोनौर के करीब तक बढ़ चला गया है । सोन के पूर्वी छोर में सोन की मुख्य नदी पादथे, और ब्रह्मपुत्र और इराना के नदियों में हीर और मान्द्रोन के सोत हैं ।

१. गल = खेतिलान बुसाईनी शब्द

२. सोन और तिब्बत के सीमान्त पर ही पाद-थर का उत्पत्ति है ।

स्थिति का जो प्रभाव होता है उस पर पीछे विचार कर चुके हैं। किन्तु नागा और जयन्तिया पहाड़ों के बीच उतार है जहाँ कर्ण और घननिरी नदियों ने अपनी घाटियाँ काटी हैं जिनके द्वारा सुरंगों से आसान तक रास्ता बनता है। इन्हीं घाटियों के कारण और खासी पहाड़ सीमान्त के पहाड़ों से अलग हैं, और हम उन्हें आसान के सुन्दर के पहाड़ों में गिन सकते हैं।

पूर्वी सीमा के कम ऊँचाई के पहाड़ों का ताँता भारतवर्ष को बरमा से अलग करता है, और चटगाँव के तट से अराकान के तट तक वह तुच्छ बाधा भी नहीं है। विद्विन और इरावदी नदियों के उपजाऊ लुगन और तंग काँठे बरमा के उत्तरी और तक बने गये हैं, जिनके लीर सुरमा-मङ्गपुत्र-काँठों के बीच पड़ा करबचान नहीं है। पटुव ही अधिकांश बरमान के कारण इस सीमान्त के रास्ते हित प्रकार दुर्गम हैं, और लोहित के काँठे से विद्विन या इरावदी के काँठे तक जाने का रास्ता हित प्रकार है, उसका उल्लेख भी पीछे कर चुके हैं।

आसान से चीन का दक्खिन-पच्छिमी मुश्न-नान प्रान्त दूर नहीं है, और मणिपुर से सीधे पूरब और आगे नदियों के काँठे के साथ दक्खिन स्थलमार्ग से भी भारतीय प्रवासियों और उपनिवेशों का प्रवाह स्थान, सुन्दुब, चम्पा (आनान) आदि तक जाता रहा है।

॥ १५. दरदिस्तान और दोलौर

हमने गंगा के साँव वाली हिमालय की हिमरेखा को भारत की उत्तरी सीमा कहा है। किन्तु पच्छिम तरफ भारतवर्ष की सीमान्त रेखा नागा पर्वत तक उस हिमरेखा के साथ नहीं आती, पटुव चिनब का अन्तर्गत पच्छिमी घाटियों के सीमा के ठीक बाद अन्तर्गत के मानने लाँजीला पर हिमरेखा १. उपनिवेश का प्रवाह दुर्गम है २. नागपुर ५० ५० १८।

[illegible]

बल्लभ या दिलीपपुर, और हमारे दरिद्र जनसमूह की ओर की एक तरफ नज़र है।

पीला धार और दही हिमालय-शृंगला के बीचोबीच
बन्दुभागा और रावी की डरली पाटिया हैं, जिन्हें एक और
उंची शृंगला एक दूसरे में बल्लग करती है। बन्दुभागा के
पहले दक्षिण-मोड़ में बड़वार है, तथा उसकी पाटी में और
ऊपर ऐसी वा पश्चिम रम्य प्रदेश। उस के दक्षिण, बंगला
के ऊपर और बड़वार भूभाग के दक्षिण-पूरव रावी की डरली
पाटी बरहा या प्राचीन बरहा है। त्रिजोहताथ के ऊपर बन्दुभागा
की पाटी और उसकी दा कुल भागों भागा और बन्दा की
पाटियों का प्रदेश लघुल बालावा है। भागा और बन्दा
हिमालय की गर्भ शृङ्खला में निहरी है और दाग लावा जोंद
के जैसे बन्दा दक्षिण उतर है, दाग की हिमालय का शृङ्खला
भी उमड़े दागे दागे दक्षिण पश्चिम में है।

[illegible]

और व्यास का सिन्धु-सतलज के घेरे में । व्यास के उपरले छातो के दिव्य प्रदेश का नाम कुन्तू (कुन्त) है । स्पष्ट है कि वह साहजिक के दक्षिण और चम्पा के पूर्वदक्षिण है । कांगड़ा और मण्डी में वसे धौला धार अलग करती है । उसकी पीठ पर व्यास के स्रोतों वाली हिमालय की बड़ी शुद्धता है ।

हम देख चुके हैं कि उस शुभ्रता की परती तरफ चन्द्रा और व्यास की उपरली धाराओं के बराबर स्थानी और परे की धारायें चली गई हैं जो मनलज में मिलती हैं, तथा बारा लावा ज्ञान के उस तरफ चन्द्रा और स्थानी में उमटी—उत्तरपश्चिम—दिशा में उह्छर नदी उतर गई है स्थानी की पाटी और साहजिक-कुन्तू के बीच उतर में दक्षिण हिमालय की गर्भ-शुभ्रता है । स्थानी-पाटी मनलज की तिम उपरली पाटी में जा निकलती है, वसे कनौर या बराहर कहते हैं । अग्यत्र-मैने सिद्ध किया है कि वही प्राचीन हिमालय देश है । कनौर के बायोबीच हिमालय की गर्भ-शुभ्रता गुहरी है, इसलिए कनौर पाटी गर्भ-शुभ्रता के अन्दर की है । उसे भीलगी शुभ्रता की मनलज पाटी अर्थात् सुच्छ में धौला धार अलग करती है । कुन्तू की पूरव पीठ में कनौर की तरफ जितने समय हिमालय की गर्भ-शुभ्रता में भी छन्द धार नम की अपनी एक बौली आगे बढ़ा दी है, जो व्यास और मनलज के पानियों का बाटनी अर्थात् कुन्तू की कनौर में अलग करती है । इस धार पर तीन पर्वतों नाम की एक ज्ञान है जिसके एक तरफ तीन नदी का पानी स्थानी में, और दूसरी तरफ पर्वतों का पानी व्यास में जाता है ।

कनौर की पीठ पर उह्छर शुभ्रता है जो स्थानी की पूरवी धारा पर के बाये बाये वहाँ तरह चली गई है जसे हिमालय

करी सोमंभ को रास्ता देते हैं। धौली गंगा के पूरब दूनगिरि और नन्दादेवी पहाड़ हैं।

रामगंगा और उमछी पूरबी धारा कोमी गंगा की पूरबी बाँह हिंद के नीचे से ही निकली हैं। उनही धाड़ियाँ, उनके ऊपर हिंद का गोल निहारी गन्ध, तथा शिराम, दूनगिरि और नन्दादेवी की धाड़ियाँ कुमाई (कुमावत) के पच्छिमी छोर को मूलिन करती हैं। उमछा पूरबी छोर काली या शास्ता नदी है जिसके बाद नेपाल राज्य शुरू होता है। चनमोहा की समझीक बनी कोमी की धाड़ी के ऊपर है, वहाँ से ३० मील ऊपर चन का बालोचर पर मरजू मिलती है जो पच्छिम में पूरब कुमाई के बीचों बीच बढ़ कर काली में मिली है—ठीक वैसा ही जैसे कौटल-मरमौर के बीच बढ़ कर गिरि जमना में जा मिली है। मरजू का गोल हिंद के अर्धान गंगा के प्रथम क्षेत्र के केवल तीन मील पच्छिम है, और वहाँ से धौलीगिरि तक मरा हो भी मील अर्धान में समान पापग का ही प्रथम-क्षेत्र है। उमछी कई भागों का नाम मरजू है, वना नदी हिम के नाम से पापग का भी भाग मरजू कहते हैं। ऊपर की तरह ही पापग के गोल गंगा का प्रथम देव वाली बहुरा-गुंजना के और ऊपर मरमौर-गुंजना के कुवि-बहुरी पहाड़ में है, और प्रथम मरमौर और मरमुर के छोटी तक पहुँचते हैं। पापग के कई स्थानों और मरमौर और मरमुर के अनेक स्थानों के बीच मरमौर गुंजना के केवल तीन मील दूर दूर बीच के धाड़ों का व्यवधान है। पापग की इन उंचे स्थानों का चने बनी धाड़ों में से कुमाई में केवल बायीं की गंगाओं की गंगा, धौलीगंगा और मरमौर वाली है जो तीनो बहुरा गुंजना

१. ग. (१२२२) = १२२२ ।

२. मरमौर का केवल नाम है कि

कहलाती है। इन नदियों की घाटियां तिब्बत के चाङ्ग प्रान्त में पहुँचाती हैं जो डरी के पूरव तथा ल्हासा वाली नदी उइ-चु के पच्छिम तक ब्रह्मपुत्र घाटी का नाम है। चाङ्ग का मुख्य नगर शिगर्वे है, और चाङ्ग में से गुजरने के कारण ही ब्रह्मपुत्र चाङ्गपो (चाङ्ग-वाला) कहलाता है। ल्हासा का प्रान्त उइ अर्थात् मध्यदेश है, और इसीलिए उसकी नदी उइ-चु अर्थात् मध्यदेश का पानी कहलाती है। ल्हासा के दक्खिन भूटान के उत्तर की ब्रह्मपुत्र घाटी ल्हासा अर्थात् दक्खिन देश है।

✓ ए. सिकिम, भूटान, आनामांत्तर प्रदेशः—नेपाल के उत्तर-पूरबी छोर पर काञ्चनजङ्घा है। उसके पूरव हिमालय का पानी गङ्गा के बजाय ब्रह्मपुत्र में जाता है। तिब्बत की घाटियों का प्रदेश जो नेपाल के ठीक पूरव लगा है सिकिम है। उसी के निचले छोर में दार्जिलिङ—तिब्बतियों का दोर्जे-लिङ या बज्रद्वीप—है। सिकिम के पूरव भूटान—तिब्बतियों का दुगयुल, बिजली का देश—है। उसमें ब्रह्मपुत्र में मिलने वाली अनेक धाराएँ फैली हुई हैं। उनमें से पच्छिम से पूरव तौरसा उर्क अमोचू, रइशक उर्क चिंगचू, संतोश और मनास हिमालय की गर्भ-शृंखला से निकली हैं। मनास की एक धारा तो और ऊपर से आई है। इसीलिए इन नदियों की घाटियों से तिब्बत को सीधे रास्ते हैं। दार्जिलिङ, कालिम्पोङ और गङ्गाक (सिकिम के मुख्य नगर) से अमोचु की घाटी अर्थात् चुम्यो घाटी द्वारा हिमालय की ठीक जड़ तक पहुँच सकते हैं। उनके ठीक उत्तर तरफ ब्रह्मपुत्र से दक्खिन से मिलने वाली न्यङ नदी की घाटी है जिन में ग्यान्च शहर है। आज-कल भारत वर्ष से ल्हासा जाने वाला मुख्य रास्ता यही है। ग्यान्च से शिगर्वे उत्तरपच्छिम उसी न्यङ और ब्रह्मपुत्र के संगम के

करमीर के अनेक फल प्रसिद्ध हैं; कुन्तू, कुमाऊँ आदि में भी वे सभी पैदा हो सकते हैं। जंगली सेब, अंगूर और दाइमी (अनार) कुन्तू, क्यूँठल, कुमाऊँ आदि में प्रायः सब जगह सुदरी हैं। यहाँ के सेब नासपाती के नये बगीचे अब करमीर काथुल का मुकाबला करने लगे हैं। अम्बरोट, सुमानी आदि भी प्रायः सभी पहाड़ों में सुगमता से उपजते हैं। पाँचवीं शताब्दी ई० पू० में पाणिनि मुनि ने अपने व्याकरण में 'कापिशायन' शब्द की सिद्धि के लिए एक सूत्र बनाया है, जिसका उदाहरण दिया जाता है—कापिशायनी शाखा। यद्यपि वह उदाहरण पीछे के ग्रन्थों का है, तो भी यह बहुत सम्भव है कि वह पाणिनि के समय में चला आता था, क्योंकि पाणिनि के समय भी कापिरी की कोई पीछे चलूँ बाजार में आती रही होगी जिससे कापिशायन शब्द का पत्तन हुआ। इस प्रकार कपिरा और उसके पड़ोसी देशों के अंगूरों और अन्य फलों का इतिहास कम से कम पाँचवीं शताब्दी ई० पू० से भी पहले का है। यदि हम इस बात पर ध्यान दें कि बौद्ध वाङ्मय में बागवानी का उल्लेख नहीं मिलता, 'आरामो' और 'उत्थानो' (उद्यानों) की बहुतायत पहले पहल हम जानकों की पहातियों अर्थात् आठवीं-सातवीं शताब्दी ई० पू० के करीब समय में ही पाते हैं, तो कहना होगा कि भारतवर्ष में बागवानी के आरम्भ के साथ ही पहाड़ी प्रदेशों में भी फलों की कृषि की जाने लगी थी।

मेची और बागवानी की उपज के अलावा हिमालय के जंगलों की उपज की भी बड़ी कीमत है। अनेक प्रकार की ओषधियों के लिए तो वह महा म प्रसिद्ध रहा ही है। किन्तु चाँद, देवदार आदि जैसे अनेक पेड़ हैं जो हिमालय की विभिन्न ऊँचा



...पार के 'हिन्द' को या उसके बड़े भाग को सुवर्ण
कहते थे, और सुवर्णभूमि के साथ भारतवर्ष के पच्छिमी
पूरबी तट के व्यापार का उल्लेख जातकों की कहानियों (७
६ वीं शताब्दी ई० पू०) में पहले पहल मिलता है ।

किन्तु भारतवर्ष का सुवर्णभूमि से सम्बन्ध केवल जलमार्ग
से ही न था । उसके पूरबी तट की बस्तियों से पहले नदियों
उपरले काँठों में बस्तियां बस चुकी थीं इससे सिद्ध होता है कि
स्थलमार्ग से भी उपनिवेश-स्थापकों की धारा जानी थी । उन
स्थलमार्गों की स्पष्टता तीन दिशाएँ हो सकती थीं, एक चटगाँव
से तट के साथ साथ, दूसरे सुमा काँठे से मणिपुर लॉच कर
आसाम से पनकोई-गुंजला के पच्छिमी या पूरबी छोर से चिन्द-
विन या इरावदी-काँठे में और आगे पूरब या दक्खिन । आसाम
के पूरब तरफ तिव्वत-पठार के दक्खिनपूरबी छोर में इगवदी
सात्वान, मेकौङ और लाल नदी (मोङ कोई) की उपरली घाटियां
एक दूसरे के बहुत नजदीक हैं ; उन्हीं नदियों के निचले काँठों से
बरना, खान कन्चुज और आनाम तक के प्रदेश अर्थात् समूची
सुवर्णभूमि घनी है ।

भारतीय जाति और सभ्यता में मुख्य अंश आर्य है, और
इन देशों में स्थलमार्ग से भारतीय प्रवाह तभी आ सकता था
जब पहले इनके रास्तों की जड़ में अर्थात् आसाम और पूरब
बंगाल में आर्य सत्ता पूरी तरह स्थापित हो जाती । भारतवर्ष
की जनजाति-विषयक स्थिति की इन आगे आलोचना करेंगे,
और उक्तसे स्पष्ट होगा कि क्यों इन प्रदेशों में आर्य सत्ता
उ हिन्दुस्तान या पच्छिमी विन्ध्यनेत्रता से पीछे पहुँची ।
यों भी हो, बंग अर्थात् पूरब बंगाल में पाँचवीं शताब्दी ई० पू० से
ले आर्य सत्ता जरूर स्थापित हो चुकी थी, क्योंकि

अ. पूर्वी स्थलमार्ग;—आसाम और बंगाल से स्थल द्वारा चीन तथा हिन्दचीनी जाने वाले रास्तों को हम पूर्वी सीमान्त-मार्ग कहते हैं। भारतवर्ष और हिन्दचीनी के प्राचीन इतिहास में उन रास्तों का बड़ा महत्त्व रहा है। जैसा कि हम आगे देखेंगे हिन्दचीनी प्रायद्वीप की जनता में चीनी-विजयती चंरा मध्य काल में—जो यों वस्यों शताब्दी ई० के बाद—आया है। उससे पहले यहाँ छोटा नागपुर के मुंडा और सन्थाल लोगों या खासी-जयन्तिया पहाड़ों की जातियों की मगोत्र जातियाँ रहती थीं, और इसी सन् के एक दो शताब्दी पहले से उन में भारतीय रुधिर मिलता तथा भारतीय रंग पड़ना रहा था, यहाँ तक कि स्वयं चीन वाले हम समूचे प्रायद्वीप को भारतवर्ष का हिस्सा मानते थे। पाँचवीं शताब्दी ई० के पूर्वार्ध में चीनी इतिहास लेखक फन-ये ने भारतवर्ष का विस्तार का प्रोक या काकुल से पान-की अथवा आनाम तक लिखा है^१। दूसरी शताब्दी ई० में रोमन भूगोल-लेखक टालमी ने हिन्द-चीनी प्रायद्वीप को 'गंगा पार का हिन्द' कहा है और उसमें स्थानों के जो नाम दिये हैं वे सब संस्कृत के हैं। 'गंगा पार के हिन्द' के सब में पूर्वी भाग बम्पा में भी दूसरी शताब्दी ई० के संस्कृत अभिलेख मिले हैं जिनमें वहाँ के भीमार चंरा के हिन्दू राजाओं का उल्लेख है। इसका यह अर्थ है कि दूसरी शताब्दी ई० के अन्त तक हम प्रायद्वीप के पूर्वी छोर तक भारतीय सत्ता न केवल पहुँच प्रयुक्त उस भी पहुँची थी, उभरक पश्चिमी छोर में उसका प्रवेश कई शताब्दियाँ पहले हुआ होगा। भारतवासी

१. अ. रा. प. भा. १९१९, ट. ६००।

१. अभिलेख = पुरा हुआ लेख। *Imperial Gazetteer of India* के अनेक लेख इस वर्ष में 'हिन्दोलेख' लिखते हैं, हिन्दु नाँवा, कोरा आदि में। विचार में लिखा नहीं कहना चाहते।

कोसी के पूरब का कोई रास्ता उस समय बला हुआ न था।

ललितवादित्य के समय के बाद दोनों देशों में प्रायः मैत्री का ही सम्बन्ध रहा। तिब्बत वाले भारत को अपना गुरु मानते थे और अब तक मानते हैं। मगध आदि देशों से अनेक भारतीय विद्वान् तिब्बत जाते रहे, वहाँ का कुल वाङ्मय उन्हीं के या उनके तिब्बती शिष्यों के किये हुए अनुवादों से बना है। भारतवर्ष में इस्लाम की स्थापना से दोनों देशों का वह सम्बन्ध टूट गया, और केवल हमारे पहाड़ी आँचल के साथ तिब्बत का पुराना सम्बन्ध रह गया।

इस्लाम की सेनायें उस पहाड़ी आँचल में भी प्रायः प्रवेश न कर सकीं। गजनवी तुर्कों ने भारतवर्ष के पहले पहाड़ी प्रान्त — अफगानिस्तान — को पूरी तरह अधीन करने के बाद करमाँच तथा काँगड़ा पर चढ़ाईयाँ कीं; करमाँच के दक्खिन से महमूद को हार कर लौटना पड़ा, पर काँगड़ा में नगरकोट की चढ़ाई में वह सफल हुआ। वो भी वह चढ़ाई केवल लूट के लिए थी, उसका काँगड़ा पर कोई स्थायी प्रभाव न हुआ। दिल्ली में तुर्कों का जो पहला राज्य स्थापित हुआ उसकी उत्तरी सीमा हिमालय की उपत्यका तक मुरिदल से पहुँचती थी। किन्तु करमाँच में पाँचम से और उत्तर से धीरे धीरे इस्लाम आ रहा था, और बाद वहाँ जो मुस्लिम राज्य स्थापित हुआ (१३३९ ई०) वह एक आन्तरिक क्रान्ति का फल था न कि बाहरी हमले का। किन्तु मुगलों के समय करमाँच पहले पहल बाहरी मुस्लिम शासक के अधीन हुआ। पहले वो मिर्जा हैदर ने उसे उत्तर तरफ ओझी ला से आकर जीता (१५३० ई०), फिर अकबर के समय से वह दिल्ली की सल्तनत के अधीन रहा। करमाँच के बाद काँगड़ा का बारा थी। महमूद गजनवी के समय से अकबर के समय तक उस हिस्से ने न हँड़ा था, जहाँगीर के समय जा कर उस पर पहले पहल

मुगल आधिपत्य नाम को स्थापित हुआ। उसके पुरुष के पहंड़ी प्रदेश फिर भी स्वतन्त्र रहे। सरमौर का पहंड़ी राजा जिस की राजधानी मैदान में केवल छः घंटे की ताने की दौड़ पर है, बड़ी भारी चीज समझा जाता था। गढ़वाल का राजा तो मृत्तममृत्ता मुगलों का निम्नकार कर मन्त्रता था। दाग शिखोद के औरंगजेब में हारने पर हम का चेटा सुलेमान शिखोद उसी गढ़वाल के राजा के पास भीजगर भाग गया था। गुन गोविन्द-सिंह ने जब औरंगजेब के विरुद्ध यह आग्न संगठित करनी चाही, तब वे अपना आचार विश्वागपुर में गढ़वाल तक के पहंड़ी प्रदेश का ही बनाना चाहते थे। निमन्नेह उन्हें यह विचार शिवाजी के चरित्र में मिला था, छिन्नु के जन मुर्दा पहंड़ी राजाओं में यह जन न कुछ मर्क जा शिवाजी ने मानसियों में कुंही थी। नगल की तरह मुसलमानों ने कभी आस्य उठा कर नहीं देखा, और मृदान में चरित्रवार शिवाजी को मुँह की ला कर भीटना कहा था। नगल के गाहों की शक्ति कृषविदार और सिवइट नष्ट मृत्तमल में बहूँवती थी।

छिन्नु इन पहंड़ी प्रदेशों, निरांग कर नगल के साथ निम्न का और निम्न के दाग रोज का भी सम्बन्ध मन्त्र काल में बनाता रहा।

आधुनिक गजनीति में जितने, जैन और हम ही निम्नो का सम्बन्ध निम्न के लिए बहुत दिन बचती रही, और आज में दागभेद की स्थापना कर कहाँ के यह निम्न बहुत कुछ अन्तरे के सम्बन्ध में का गया। अन्तरे और दागभेद में यह अन्तरे 'वर्तमान' दून रहने है, और अन्तरे नष्ट अन्तरे मरुट टक और मरुट है। जैन के गजनीति की दोषना और दागभेद के दाग और शिवाजी गजनीति की सम्बन्धों के दाग निम्न अन्तरे की रीति में पूरी तरह प्रकटा अन्तरे में बहुत

बुद्ध पपा हुआ है। इन तीन बड़ी शक्तिजों के बीच होने के कारण
अप भी विश्व-राजनीति में वह एक काफ़ी महत्व का देश है।
स्वतन्त्र चीन का सामर्थ्य बढ़ने और भारतवर्ष के उत्तरी अञ्चल,
विशेष कर नेपाल, के जागरूक होने से इसका महत्व और भी
बढ़ जायगा। फरमौर, हुस्तू, बनौर, गढ़वाल, कुमाऊँ, नेपाल,
सिक्किम और भूटान के साथ अप भी इसका काफ़ी व्यापार है।

चीनी तुर्किस्तान से निम्नत और पामीर की विभाजक सीता
(पारकन्द) नदी की घाटी के ऊपर कारकोरम जोत बढ़ कर
शिषोक-घाटी और लदाम्य द्वारा जो रास्ता फरमौर पहुँचता है,
इससे उत्तरी रास्तों का दूसरा उपवर्ग शुरू होता है। वह रास्ता
पामीर के किनारे किनारे से निकल आता और निम्नत के
पच्छिमी ओषल को काटता है। इस उपवर्ग के यात्री सय रास्ते
पामीर के अन्दर से शिषोक से पच्छिम की सिन्ध की उत्तरी
पागलों अर्थात् शिगर, हुंदा, गाल्गत, स्वात, पंजकौरा और
यारखू की घाटियों में और उनके द्वारा सिन्ध-घाटी में उतरते हैं।
पामीरों के पूरव चीनी तुर्किस्तान और चीन, उत्तर फरगाना, और
पच्छिम बंगु का काँठा अर्थात् मध्य तुर्किस्तान है। इन सभी
प्रदेशों से भारतवर्ष में आने के लिए पामीरों के रास्ते बान आते
हैं। आनू के काँठे से बड़ज्जा की कोरुषा नदी की घाटी के
ऊपर फौझाबाद और वहाँ से जेबक तक बढ़ सकते हैं। जेबक
की ऊँचाई समुद्र-सतह से सिक ८५०० फुट है। उसके ऊपर
सानने तुक्स्तान, दोरा आदि जोत हैं जो बितराल और भारतीय
मैदान का रास्ता खोलती हैं, उसके उत्तरपूरव सशाय के तुच्छ
जोत (६५०० फुट) पार कर बंगु की कोहनी या मोड़ के
किनारे इरक़ाशिम शहर तक पहुँचने का रास्ता है। इरक़ाशिम
से आनू घाटी के साथ पामीरों के अन्दर, और वहाँ से बाहे
दक्खिन तरफ़ भारत की, अथवा पूरव काशगर-पारकन्द के मैदान

पर स्थापित हो चुके थे, तब तक कायुल का तुष्य यूनानी राज्य बना ही हुआ था। जर्मन विद्वान् मार्कार्ट ने उन पाँचों सरदारों के राज्यों की पहचान की थी, और उसे सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। उनमें से एक यर्रा में, एक चितराल में और एक गान्धार देश के उत्तरी हिस्से में कहीं था। दिन्दूकुरा पार से आने वाली कोई शक्ति कायुल लिये बिना चितराल और उत्तरी गान्धार ले ले, यह नहीं हो सकता है यदि वह इन उत्तरी रास्तों से सिन्ध घाटी में प्रवेश करे। यह ध्यान देने की बात है कि कायुल और करमौर दोनों में शत्रु के रहते हुए भी मध्य एशिया से कम्बोज-उरशा (पामीर-हजारा) या कम्बोज-उझियान (पामीर-स्वात) के इन रास्तों से सीधे रावलपिन्दी या पेशावर अर्थात् पूरबी या पच्छिमी गान्धार को पहुँचा जा सकता है। पामीर से नाँचे उतरने के रास्तों का उल्लेख हो चुका है। यदि गिल्गित-हुंजा द्वारा सिन्ध-घाटी में उतरा जाय तो आगे चिलास और बाबुसर जोत द्वारा कुन्हार की घाटी में कागान होते हुए हजारा से तक्ष-शिला पहुँच सकते हैं। उसी प्रकार थारसू या स्वात घाटी (उझियान) के रास्ते उतरें तो मालकन्द जोत लाँचकर पुष्करावती या उदभाण्डपुर पहुँच सकते हैं। ✓

अधिक लोग इन रास्तों से भारत में आये, किन्तु उनसे पहले भारतीय प्रवासियों ने उनके घर तक अर्थात् चीन के कानसू प्रान्त की सीमा तक 'उपरले भारत' में उपनिवेश बसाते हुए इन रास्तों को शायद पहले पहल खोला था। आजकल के चीनी तुर्किस्तान में ईस्वी सन् में तीन चार शताब्दी पहले तक शक, तुस्सर, अथिच आदि आर्य जातियाँ फिरन्दर घरवाहों की अवस्था में रहती थीं, जब कि भारतीय आर्यों ने वहाँ अपनी सभ्यता और उपनिवेशों की स्थापना की। तब से आठवीं शताब्दी ई० तक वह देश ऐसी पूरी तरह भारतीय बना रहा कि आधुनिक विद्वान् उस काल के लिए उसे

'उत्तराभा भारत' (Uttarabharat) कहते हैं। श्रष्टिकों और भागतर्षण का पहला सम्बन्ध श्रष्टिकों के भारतवर्ष पर चढ़ाई करने से नहीं, प्रत्युत भारतवासियों के उनके देश को भारत का अंग बना लेने से हुआ। बाद में भारतवर्ष में श्रष्टिक साम्राज्य स्थापित होने और श्रष्टिकों के पूरी तरह भारतीय बन जाने से उपराले भारत में भारतीय मना को और पुष्टि मिली। किन्तु श्रष्टिकों के भारत आने से पहले इस मना की जड़ वहाँ अम पृथ्वी थी; कनिष्क ने स्त्रोन के राजा विजयसिंह के पुत्र विजयवर्धन के साथ मिल कर भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी। भारतवर्ष और स्त्रोन की अनुष्ठिति के अनुसार पहले पहल सम्राट अशोक के समय स्त्रोन में एक भारतीय कानिदेश स्थापित हुआ था—अर्थात् कनिष्क से होने वाला बंधी पहले। कम्बोज देश अशोक के साम्राज्य में था, और अब यह ज्ञान ज्ञान पर कि कम्बोज देश भारतीय वासी और बद्धर्षों का त्रिम की पृथ्वी सीमा सीमा या यावदम्प नहीं थी, इस बात की सम्भावना बहुत बढ़ गई है। इस बात के लिए अशोक के मन्द अभिलेख में भी साक्ष्य है, ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु बाद अशोक के समय और बाद उसके कुछ बाद तर्जिम कोटे में भारतीय मना न प्रवेश किया हो आठवीं शताब्दी ई० तक अर्थात् इतिव एक हजार वर्षों तक मना नहीं बनी रही इसमें कोई सन्देह नहीं है। और इस लक्ष्यी अवस्था में कम्बोज देश वाले भारत के इन्हीं मन्त्र निवर्तन से न बन न, नहीं भारतवर्ष और 'उत्तराभा भारत' का सम्बन्ध बना रह सकता था।

और इसी मन्त्र के द्वारा भारतवर्ष का 'उत्तराभा भारत' के और अंग बनने का सम्बन्ध होता था। जब और भारतवर्ष के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध न था तब बहुत देर बाद दूसरी शताब्दी ई० पूर्व में जब मुद्रा का प्रयोग हुआ, किन्तु इसी वही का वास्तव

आजकल की विश्व-राजनीति में उन की क्या कीमत है, और उन से सेनायों लोप सबकी हैं कि नहीं, इस सम्बन्ध में हम इतना ही पाएंगे कि कम वाले अपनी पार्श्वी या भुर्गारी लावनों के लिए और अंग्रेज लोग चित्तल और गिलगित की दाश्नियों के लिए पानी मज्जग रहते हैं, तथा रावलपिटी और गिलगित के बीच द्वारा दिले में आज अंग्रेजों के एक दर्जन शौजी धाने हैं ।

उ. उत्तराखण्ड की और पर्वतों स्थलमार्गः—दोरा और लाहक से ईराक तक की जोनी द्वारा बलम-बदरखी और बाबुल-पाटी के बीच चलने वाले इतिहास-प्रसिद्ध मार्गों का अंग्रेज उन उन प्रदेशों के वर्तन में हो चुका है । उसीमें हम देख चुके हैं कि बाबुल के उत्तर का पश्चिम में जाने वाले सब रास्ते या तो पोरबन्दर अथवा पंजरीर पाटी में परीवर हो कर पंजरीर नदी के साथ चलते हैं, और या दानिया, ईराक और ऊनाई हो कर बाबुल नदी के साथ । परीवर और दानिया का महत्व इसी में प्रकट है । सिक्किम ने इसी परीवर के स्थान पर अर्थात् दानिया के स्थान पर हिन्दुस्तान की ओर से अपनी एक लावनी अन्तर्गतान्त्रिका बनाई थी । आज भी उस स्थान का देना ही और बरका हुआ है । ऊनाई और न केवल उत्तर में प्रत्युत दक्षिण में इराक की पाटी पदवर जाने वाले रास्ते की भी बाहू बनती है । दानिया और ईराक से जो रौल अकरोप मिले हैं वे सूचित करते हैं कि प्राचीन दान से भी वे स्थान मुराद राजपथ पर हैं ।

बाबुल के स्थान से जाने काश्गार नदी के साथ जाते हुए दोरा द्वारा पंजरीर का पदवर है । हिन्दु दानिया के दक्षिण में वे बाबुल की ओर कर अन्तर्गतान्त्रिकी पाटी का अन्तर्गतान्त्रिकी मार्ग से जो दानिया का अन्तर्गतान्त्रिकी मार्ग है । यह मार्ग दोरी

फिर खान-घाटी और माजकन्द जोत द्वारा मिन्ध के पुगने घाट मोहिन्द (उद्भाण्डपुर) पर ।

काबुल में दक्खिन के कुर्रम (पैवार कोनरा, शुगुर गर्दन) और टोर्खा के रास्ते ख्यावार की दृष्टि में जतने महत्त्व के नहीं हैं । सेंदिन गोमल का रास्ता, जो गखनी के सामने है, और तिमही रेनगम के लिए बाँध हो चुकी है, शायद छीवर में भी बढ़ कर है । उसके मुँह पर डेरा इमाइलगाँ से ४१ मील पर टोंक शहर है, जहाँ से एक सुना रास्ता बाणों होकर गोमल को जाता गया है, और दूसरा टोंक से गोमल की दूसरी धारा मोर के साथ खण्डोबु (कंटे मन्चेमन), हिमा मैकुला और हिन्दूवारा के कौमी धारों को मिलाना हुआ कटा । कंटा इस प्रकार न केवल कन्दहार के प्रत्युन मध्य के रास्ते की सी जड़ पर है । उसके ठीक नीचे बोलान बसा है । बोलान और कंटा कन्दहार-गखनी रास्ते की जड़ को काट कर रहे हैं, जमी तरह टोंक और बाणों गोमल-गखनी रास्ते की । कंटा में मोरघाटी के आगार टोंक तक जो कौमी गाछ-बन्दी की गई है, डगड़े डाल पटान जालि के मूल पर-मोरघाटी-का अन्तर्गतमान के पटानों में सम्बन्ध पूरी तरह कट गया है, वह घाटी अब त्रिदिग बिभोविमान में शामिल है । यही कारण है कि बाँधे बर्दा के पटान पटानों के मध्य में सहायक हिस्सों में से हैं, जो सी के बावन्ध मौमा-बाल के पटानों की तरह त्रिदिग मरकार को नष्ट नहीं कर रहे हैं ।

कंठान में कंटा और मोरघाट जल हो कर कन्दहार और जहाँ से होकर नष्ट गया है । कन्दहार के सामने जमान तक त्रिदिग रेनगम पहुँच चुका है, इस होकर के जमान कुदर तक कमी रेनगम । त्रिदिग जमान कंटा में मौमा कन्दहार शामिल की मौमा पर दुश्मन नष्ट भी जाता गया है ।

छठा प्रकरण

समुद्र-परिखा

§ २२. जलपथ का ऐतिहासिक पर्यालोचन

जलोन्मयी शताब्दी ई० के भारतीय विषयों के अनेक लेखक इस बात पर बड़ा जोर दिया करने थे कि एक तरफ हिमालय के पर्वतों और दूसरी तरफ समुद्र की परिखा में घिरे रहने के कारण भारतवर्ष महा दुनिया भर में अलग रहा है, और उत्तर-पश्चिम के कुछ दूरों या जंगलों के मिवाग और किसी तरह से हमका बाहरी जगत् से सम्बन्ध न था। बीसवीं सदी की नई श्रोत्र इस विचार को पुनः अन्धविश्वासों की रहो-ठोकरों में डाल चुकी है। भारतवर्ष के इस कल्पित अकेलेपन का शिगड़ी सारा केवल मिथ्या विश्वासों की हवा में है, एक ठोस भौगोलिक कारण भी श्रोत्र निरूपित गया था। हमारे देश के पाटन-पुष्पक-सेमक हमें अब तक मग्नशाक्त मानने आते हैं। भूमिदा में उत्तर भारतीय पाटन पुष्पकों के दो एक ग्रन्थें लिखे गये थे, निम्न-लिखित ग्रन्थ दक्षिण के एक प्रामद शिवाभावावृत्त की पाटन पुष्पक का है—

“भारतवर्ष एक साम्राज्यक राज्य रही है जिन देशों का मरुत्तूर हो। जिसमें अन्धविश्वास बन्धनगत बन गए। और जिन के वहीमें से हवा के समुद्र है इनके अन्धविश्वास अन्धविश्वास समुद्र

संसार के इतिहास पर भारतीय समुद्र से अधिक प्रभाव डाल सकना ।

इतिहास की दृष्टि से भारतीय समुद्र का बड़ा ऊँचा स्थान है ... वह टीक उन अज्ञातसंसारों में फैला है जहाँ 'मन से अविष्ट ऐतिहासिक पन्ना का चट्टिबन्ध' शुरू होता है, ... अत्यन्त प्राचीन काल से समुद्र के आसपास के विस्तृत विविध-प्राचीन जगत्पार में कमरा बड़ा दिग्गता रहा है । वह (बड़ी बड़ी) भटनार्यों की रंगमन्त्री बनता रहा है ।

भारतवर्ष के अत्यन्त लम्बाई के टीक बीच में है, और इसी लिए हमका समुद्र प्राचीन मानव पृथ्वी प्रगल्भ के बेग्न में था । हम समुद्र का एक परिच्छिन्न नरक हैं, एक पूरक नरक । पूरक तरह दिग्दर्शनी प्रागर्द्धन भारतीय अवस्था संशानु द्वीपसमुद्र और चीन हैं, परिच्छिन्न नरक पार्श्व की लाड़ी और काल सागर और भारतीय सागर के लहरनी दम । भारतवर्ष के पृथ्वी छोर से चीन के लहरगल या इतिव्यन पर्वत तक समूचे दिग्दर्शनी और संशानु द्वीपों से प्राचीन काल से प्रगल्भी लोग रहने में, इसी कारण वह चीन और भारत दोनों की सत्यता बढ़ाने गुगनी की की भी दोनों दम का प्रगल्भ परिच्छिन्न बढ़ाने पीछे हो जाता । दिग्नु परिच्छिन्न का लाड़ी दवा काल सागर के पर्वीय में बढ़ाने प्रगल्भी संशानु—संशानु ३३३३—१३३३ ई० पू०—से प्रगल्भी अग्निवी रहनी की । इतिव्यन भारत के इतिवह प्रगल्भी से इन प्रगल्भी का बढ़ाने प्रगल्भी संशानु १३३३ के प्रगल्भी प्रगल्भी हैं । प्रगल्भी से प्रगल्भी के प्रगल्भी प्रगल्भी का प्रगल्भी है । प्रगल्भी से

१. इतिवह प्रगल्भी ३३३३ प्रगल्भी प्रगल्भी । प्रगल्भी प्रगल्भी प्रगल्भी प्रगल्भी ३३३३

संगम के निर्दिष्ट पर भारतीय समुद्र से अधिक प्रमाण मिल सकता है।

निर्दिष्ट की दृष्टि में भारतीय समुद्र का बड़ा ऊँचा स्थान है... यह टीक उन अज्ञातस्थानों में पैदा है जहाँ 'यह एक अधिक ऐतिहासिक घटना का कटिबन्ध' शुरू होगा है, ... अत्यन्त प्राचीन काल में समुद्र के आगम के विस्तृत विविध-जानीय व्यापार में समझा बना दिखता रहा है। वह (बड़ी बड़ी) घटनाओं की रंगमञ्ची बनता रहा है।

मानवर्ग के विस्तृत गतिशास्त्र टीक बीच में है, और इसी विस्तृत समुद्र प्राचीन मध्य पूर्वी प्रगम के क्षेत्र में था। हम समुद्र का एक विशिष्ट तारक है, एक पूरव तारक। पूर्वी तारक हिन्दुस्थानी प्रायद्वीप भारतीय समुद्र में आगम और चीन है, विशिष्ट तारक, कर्मास की लाठी और काम मागर और भारतीय मागर के कटवर्ती रहा। मानवर्ग के पूर्वी क्षेत्र में चीन के मानवर्ग का विस्तृत वर्तमान तारक समूह हिन्दुस्थानी और मध्य पूर्वी में प्राचीन काल में प्रगती लाता रहने में, इसी कारण यह चीन और मागर दोनों की मध्यम बहुत पूर्वी की दो दो लाइनों तथा दो वस्तुतः विशिष्ट बहुत विशिष्ट दो लाइनें। हिन्दु कर्मास की लाठी तथा काम मागर के वर्तमान में बहुत प्राचीन समय—संभवतः १०००-१००० ई० पूर्व—में मध्य अफ्रीका स्थानी की इस्लाम मानव के इस्लाम तथा में एक अफ्रीका की बहुत प्राचीन मानव। इस के उदाहरण 'यह है' और इस के रूप के दो मानव, मध्य की इस्लाम का उदाहरण है 'यह बहुत'।

१. निर्दिष्ट तारक तारक १००० ई० पूर्व / मानवर्ग प्राचीन

काल के लिए है १००० ई०

१००० ई०

होने पर अवाधायें बरत गईं, पर भारतवर्ष के पश्चिमी व्यापार में और भी बढ़ती हुई। पारसी सम्राट दारमबदु का एक नाविक मित्र नदी से समुद्र-तट होने हुए जाल माल के चार छोर तक पहुँच गया, तब अरबियों और यूनानियों को भी उस जल मार्ग का पता चला। और सम्राटों की एक अच्छी अलमैना थी। पश्चिम एशिया और मध्य के यूनानी राज्यों के साथ भारतवर्ष का व्यापार सम्बन्ध था।

हिन्दु भारतीय व्यापारी मात्र कारिम शाही तक ही अपना
साथ ले जाने, और वहाँ ॥ दूसरे हाथों वह स्थल के समेत मिय
यूनान आदि में पहुँचना । लाल सागर का सीधा रास्ता बहुत कुछ
नूतन था वृथा था । लगभग २०० ई० पू० में एक भारतीय मारिक
अपने मार्गों में विशुद्ध रूप अच्छे सा साथ सागर के तट पर जा
पहुँचा, वह मिय के यूनानियों को इस मार्ग में सीने भारत पहुँचने
का उपाय हुआ, और इसकी अवगमनता में एक यूनानी बेड़ा
मिय ॥ भारत पहुँचा इससे बाद में मिय और पश्चिमी देशों
का भारत में व्यापार बढ़ गया । यूनान के स्थान में रोम
का साम्राज्य स्थापित होने पर भी वह मार्गस्थित व्यापार अनेक
उत्तर-वृद्धों में बना रहा । भारतीय व्यापारियों का एक समूह
दूर तक बढ़कर इस जमीनी के तट पर भी आ गया था ।

[illegible]

पसन्द करती हैं। सन् १९२९ में दैनिक पत्रों में एक समाचार छपा था कि एक बंगाली सरकर जिसका समूचा जीवन पानी पर बीता था, लन्दन के एक विमंत्रित होटल में ठहरने पर इतना घबड़ा उठा कि वह होटल की सिङ्की से टेम्स नदी में कूद पड़ा!

§ २३. जल-और स्थल-पथ का आपेक्षिक मूल्य

किन्तु जो भी कारण हो, आज भारतवर्ष का अपना सामुद्रिक चेष्टा नहीं है। और उम दशा में, ऐतिहासिक विन्सेन्ट स्मिथ का कहना है कि “भारतवर्ष अब उम शक्ति का सुनम मास है, जो समुद्र की अधिपति हो”^१। इसका अर्थ क्या है?

यह ठीक है कि कोई यूरोपियन या अन्य शक्ति, जिसे समुद्र के रास्ते भारतवर्ष पर बढ़ाई करनी हो, तब तक इस देश तक पहुँच नहीं सकती जब तक वह ब्रिटेन को समुद्र पर नीचा न दिखा सके। किन्तु यह ठीक नहीं है कि “उत्तरपच्छिमी दरों का सामरिक महत्त्व घट गया है और बम्बई और कराची का उसी हिमाज में बढ़ गया है”^२। बम्बई और कराची का सामरिक महत्त्व शून्य बढ़ गया है, किन्तु स्थल-मार्गों का महत्त्व भी अभी तक बना हुआ है। नेपोलियन के समय से आज तक उस तरफ से आ सकने वाली यूरोपियन सेनाओं के पैरों की आहट ने ब्रिटिश नेताओं को उन्मिद्र और विन्मिन्न किये रक्खा है। यूरोपियन शक्तिगों में से यदि एक के हाथ में भारतवर्ष के जलमार्गों का पूरा प्रभुत्व हो और दूसरी के हाथ स्थलमार्गों का, तो यह बात ठीक है कि जल-स्वामिनी शक्ति स्वतन्त्र स्वामिनी की अपेक्षा बड़े स्वर्ण पर और बड़े कष्ट में भारतवर्ष तक पहुँच सकती है। किन्तु

१. भारतवर्ष दि०, मई ६४, १० < १।

२. वही।

‘उपरले भारत’ (Serindia) कहते हैं। श्रृषिकों और भारतवर्ष का पहला सम्बन्ध श्रृषिकों के भारतवर्ष पर चढ़ाई करने से नहीं, प्रत्युत भारतवासियों के उनके देश को भारत का अंग बना लेने से हुआ। बाद में भारतवर्ष में श्रृषिक साम्राज्य स्थापित होने और श्रृषिकों के पूरी तरह भारतीय बन जाने से उपरले भारत में भारतीय सत्ता को और पुष्टि मिली। किन्तु श्रृषिकों के भारत जाने से पहले उस सत्ता की जड़ यहाँ जम चुकी थी, कनिष्क ने खोतन के राजा विजयसिंह के पुत्र विजयकीर्ति के साथ मिल कर भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी। भारतवर्ष और खोतन की अनुश्रुति के अनुसार पहले पहल सम्राट् अशोक के समय खोतन में एक भारतीय उपनिवेश स्थापित हुआ था—अर्थात् कनिष्क से पौने चार शताब्दी पहले। कम्बोज देश अशोक के साम्राज्य में था, और अब यह जाना जाने पर कि कम्बोज देश प्राचीन पाभीर और यदुषाँ था जिस की पूरबी सीमा मीता या यारकन्द नदी थी, इस बात की सम्भावना बहुत बढ़ गई है। इस बात के लिए अशोक के एक अभिलेख में भी साक्षी है, ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु चाहे अशोक के समय और चाहे उसके कुछ बाद तरीम कौंठे में भारतीय सत्ता ने प्रवेश किया हो, आठवीं शताब्दी ई० तक अर्थात् करीब एक हजार वर्षों तक सत्ता यहाँ बनी रही इसमें कोई सन्देह नहीं है। और उस लम्बी अवधि में कम्बोज देश वाले भारत के उत्तरी गन्ने नियमित रूप से चलने से, तभी भारतवर्ष और ‘उपरले भारत’ का सम्बन्ध बना रह सकता था।

और उन्हीं गन्नों के द्वारा भारतवर्ष का ‘उपरले भारत’ के और आगे चीन से सम्बन्ध होता था। चीन और भारतवर्ष के बीच प्राग्ज्योतिष के गन्ने थोड़ा बहुत व्यापार दूसरी शताब्दी ई० पू० से पहले शुरू हो चुका था, किन्तु दोनों देशों का परस्पर

पहुँच गई; छठी-सातवीं शताब्दी ई० में तुर्कों के मध्य एशिया में आ जाने पर भी चीन ने अपनी सत्ता उन पर बनाये रखी। और आठवीं शताब्दी ई० के आरम्भ में जब तरुण अरब साम्राज्य की विश्वविजयिनी सेनाओं ने मध्य एशिया पर सदाश्यां शुरू कीं, तब चीन-साम्राज्य ने कानसू से कपिरी, कपिरी और काबुल तक प्रत्येक पहाड़ी सीमान्त प्रदेश में अपनी छावनियां डाल कर और उन प्रदेशों के राज्यों को अपने संगठन के अन्दर सम्मिलित कर के हृत्तारूढ़क उनका मुकाबला किया। चीन के दो तरफ़ के राष्ट्र अरब और तिब्बती बहुत बार परस्पर मिल जाते थे। तिब्बती लोग कानसू-कपिरी-काबुल मार्ग को दक्खिन से काट सकते थे, और अरब पच्छिम और उत्तर से। इन दोनों को दो तरफ़ दबा कर उस मार्ग को बचाये रखना चीन का उद्देश्य रहता था। भारतवर्ष, चीन और एशिया के इतिहास में यह एक अत्यन्त रुचिकर प्रकरण है; आज यह देख कर सचमुच अचरज होता है कि इतने दूर देशों से ऐसे दुर्गम मार्गों द्वारा दोनों तरफ़ के दुरमनों को दबाने हुए चीन-साम्राज्य अपना सामरिक सम्बन्ध कैसे बनाये रखता था।

यदि हम इन सब बातों पर ध्यान दें,—‘उपराने भारत’ में भारतीय उपनिवेशों की स्थापना और उनका फलना-फूलना, खण्डित जाति का मानवर्ष और मध्य एशिया में एक विराल टिकाऊ साम्राज्य खड़ा करना, और चीन-भारत का परस्पर सम्बन्ध तथा उभे के परिणाम, इन सब घटनाओं का मानव इतिहास में किनसा मूल्य है इस पर विचार करें—तो हमें कहना होगा कि यह जो एक विचार बन गया है कि भारतवर्ष के उत्तरपच्छिमी रान्ने उत्तरी गन्तों से अधिक महत्त्व के हैं, यह एक निरा बहम है। उत्तरी गन्तों का इतिहास उत्तरपच्छिमी रान्ने के इतिहास में यदि अधिक महत्त्व का नहीं, तो किसी तरह कम भी नहीं है।

फेर स्वात-घाटी और मालकन्द जोत द्वारा सिन्ध के पुराने घाट मोहिन्द (उदभाण्डपुर) पर ।

काबुल से दक्खिन के कुर्रम (पैवार कोनल, शुतुर गर्दन) और टोर्खा के रास्ते व्यापार की दृष्टि से उतने महत्त्व के नहीं हैं । लेकिन गोमल का रास्ता, जो गजनी के सामने है, और जिसकी रेल-पथ के लिए जांच हो चुकी है, शायद खैबर से भी बढ़ कर है । उसके मुँह पर डेग इस्माइलखा से ४१ मील पर टोंक शहर है, जहाँ से एक खुला रास्ता बाणो होकर गोमल को चला गया है, और दूसरा टोंक से गोमल की दूसरी धारा मोष के साथ मण्डाई (होट सन्डेमन), किला सैरुल्ला और हिन्दूबारा के कौत्री घाटों को मिलाना हुआ कंटा । कंटा इस प्रकार न केवल कन्दहार के प्रत्युत मोष के रास्ते की भी जड़ पर है । उसके ठीक नीचे बोलान बरा है । बोलान और केरा कन्दहार-गजनी रास्ते की जड़ को काट कर रहे हैं, उसी तरह टोंक और बाणो गोमल-गजनी रास्ते की । कंटा से मोष घाटी के भारपार टोंक तक जो कौत्री नाका-बन्दी की गई है, उसके द्वारा पठान ज़ानि के मूल घर-मोष-घाटी-का अफगानिस्तान के पठानों से सम्बन्ध पूरी तरह कट गया है, यह घाटी अब ब्रिटिश बिलॉयिन्मान में शामिल है । यही कारण है कि बाहे वहाँ के पठान पठानों के साथ से लड़ाकू किरदों में से हैं, तो भी वे बायब्य सीमा-रान्त के पठानों की तरह ब्रिटिश सरकार को तकलीफ नहीं दे पाते ।

बोलान से कंटा और खोत्रक जोत हो कर कन्दहार और वहाँ से हेरान तक रास्ता है । कन्दहार के सामने धमन तक ब्रिटिश रेल-पथ पहुँच चुका है, उधर हेरान के उत्तर कुर्रक तक रूसी रेल-पथ । ब्रिटिश रेल-पथ कंटा से सीधा पच्छिम कारिम की सीमा पर दुश्शाप तक भी चला गया है ।

तक बढ़ा, यही बात युक्तिसंगत जान पड़ती है । सिन्ध से भी धर लौप कर वह सुराष्ट्र और उज्जैन तक पहुँचा ।

उत्तरपच्छिमी सीमान्त का विशेष महत्त्व क्यों है सो पहले कह चुके हैं । किन्तु उस महत्त्व को साधारण पाठ्य-पुस्तक-लेखकों ने बहुत अधिक बढ़ा बढ़ा दिया है । कभी कभी तो वे भारतीय इतिहास को केवल उत्तरपच्छिमी आक्रमणों का एक तौता बना कर ही प्रकट करते हैं । सब से पहला बढ़ा वायव्य आक्रमण आर्यों का कहा जाता है । उसकी मीमांसा पीछे की जा चुकी है । तो भी आर्यों ने भी एक बार वायव्य मार्गों का प्रयोग किया, इस में कोई विवाद नहीं है ; क्योंकि पार्सीटर के मत के अनुसार भी भारतवर्ष से आर्यों का प्रवाह ईरान और पच्छिम एशिया की तरफ गया । आर्यों की तरह और उनसे भी पहले द्राविडों के भी पच्छिम से प्रवेश की कल्पना की गई है । ब्राह्मर्ष नाम की एक द्राविड जाति सिन्धी सीमान्त पर कलान में रहती है, इसी से डा० कार्लड्वेल ने वह कल्पना की थी । उन्होंने द्राविडों का सम्बन्ध तूरानी या तुर्की जातियों से होने की भी कल्पना की थी । उनकी ये कल्पनाएँ विद्वानों ने स्वीकार नहीं की, तो भी दायित्वहीन पाठ्यपुस्तकलेखकों ने उन्हें निश्चिन्त मत्त में मान लिया है, इस बात की शिकायत डा० सर ज्योर्ज ग्रियर्सन ने भी की है^१ । ब्राह्मर्ष लोग दक्षिण भारत से पच्छिमी व्यापार के मिश्रमिले में गये हुए एक द्राविड उपनिवेश के बंराज भी हो सकते हैं ।

निश्चिन्त रूप में भारतवर्ष पर पहला उत्तरपच्छिमी आक्रमण पारसी सम्राट् शक्यबद्ध का, और दूसरा सिद्धन्दर तथा उसके उत्तराधिकारी यूनानियों का था ।

१. ग्रियर्सन के चर्च और इतिहास (भारत-वर्ष-वर्णन) भा० १ पृ० ५०) भाग १ (भूमिका खण्ड), पृ० १, पृ० ८१-८२ ।

छठा प्रकरण

समुद्र-परिखा

§ २२. जलपथ का ऐतिहासिक पर्यालोचन

ब्रह्मोमर्षी रामान्दी ई० के भारतीय विषयों के अनेक लेखक इस बात पर बड़ा जोर दिया करते थे^१ कि एक तरफ हिमालय के परकोटे और दूसरी तरफ समुद्र की परिखा से घिरे रहने के कारण भारतवर्ष महा दुनिया भर से अलग रहा है, और उत्तर-पश्चिम के कुछ देशों या जगहों के सिवाय और किसी तरह से इसका बाहरी जगत् से सम्बन्ध न था। बीसवीं सदी की नई खोज इस विचार को पुराने अन्धविश्वासों की रद्दी-डोकरी में डाल चुकी है। भारतवर्ष के इस कल्पित अकेलेपन का जिसकी सहा केवल मिथ्या विश्वासों की हवा में है, एक ठोस भौगोलिक कारण भी खोज निकाला गया था। हमारे देश के पाठ्य-पुस्तक-लेखक इसे अब तक मद्धमाव्य मानते आते हैं। भूमिका में उत्तर भारतीय पाठ्य पुस्तकों के दो एक रज पेश किये गये थे, निम्न-लिखित रज उक्तिवन्त के एक प्रामद्व इतिहासाभ्यास की पाठ्य पुस्तक का है—

“भारतवर्ष एक सामाजिक शक्ति नहीं है, जिन देशों का तब दन्तुर हो। जिनमें स्वाभारिक चन्द्रगुह वन मकें) और जिन के पड़ोस में द्वीपों के समूह हैं, उनका निवासो स्वभावतः समुद्र

१ उदाहरण के लिये दे० रिम्ज—वायस जीव इतिहास, पृ० १।

संसार के इतिहास पर भारतीय समुद्र से अधिक प्रभाव डाल सकता है... ..

इतिहास की दृष्टि से भारतीय समुद्र का बड़ा ऊँचा स्थान है..... यह ठीक उन अक्षांशरेखाओं में फैला है जहाँ 'मध्य में अधिक ऐतिहासिक घनता का कटिबन्ध' शुरू होता है,..... अत्यन्त प्राचीन काल में समुद्र के व्यापार के विस्तृत विविध-जातीय व्यापार में उसका बड़ा हिस्सा रहा है। यह..... (बड़ी बड़ी) घटनाओं की रंगस्थली बनता रहा है ।^{११}

भारतवर्ष दक्खिन एशिया के ठीक बीच में है, और इसी लिए उसका समुद्र प्राचीन मध्य पूरबी जगत के केन्द्र में था। इस समुद्र का एक पच्छिम तरफ है, एक पूरव तरफ। पूरव तरफ हिन्दचीनी प्रायद्वीप भारतीय अधशा मलायु द्वीपसमूह और चीन है, पच्छिम तरफ फारस की खाड़ी और लाल सागर और भारतीय सागर के तटवर्ती देश। भारतवर्ष के पूरबी छोर से चीन के न नशान या दक्खिन पर्यंत तक समूचे हिन्दचीनी और मलायु द्वीपों में प्राचीन काल में जगती सोग रहते थे, इसी कारण बाह्य चीन और भारत दोनों की मध्यता बहुत पुरानी थी तो भी दोनों देशों का परस्पर परिचय बहुत पीछे हो पाया। किन्तु फारस की खाड़ी तथा लाल सागर के पश्चिम में बहुत पुराने समय — लगभग ३०००-२००० ई० पू० — में मध्य जातियों रहनी थी। दक्खिन भारत के द्राविड प्रयोगों में इन जातियों का बहुत पुराना सम्बन्ध रहने के प्रमाण मिलते हैं। अतएव वे तुष के चेटे जातिय नुष्य की जनजातों का उल्लेख है। तब बहुत से

१ इतिहास पत्र नवन दुर्गा अन्वेषण १९२६ (भारतवर्ष प्राचीन

जगत की दृष्टि में, ७० २६-२६।

२. १, ११६. ३-२।

पसन्द करती हैं। सन् १९२९ में दैनिक पत्रों में एक समाचार छपा था कि एक बंगाली लरकर जिसका समूचा जीवन पानी पर बीता था, सन्दन के एक विमंजिले होटल में ठहरने पर इतना पचड़ा उठा कि वह होटल की खिड़की से टेम्स नदी में कूद पड़ा !

§ २३. जल- और स्थल-पथ का आपेक्षिक मूल्य

किन्तु जो भी कारण हो, आज भारतवर्ष का अपना सामुद्रिक वेड़ा नहीं है। और उस देश में, ऐतिहासिक विन्नेन्ट रिम्प का कहना है कि “भारतवर्ष अब उस शक्ति का सुलभ प्राप्त है, जो समुद्र की अधिपति हो”^१। इसका अर्थ क्या है ?

यह ठीक है कि कोई यूरोपियन वा अन्य शक्ति, जिसे समुद्र के समूचे भारतवर्ष पर बढ़ाई करनी हो, तब तक इस देश तक पहुँच नहीं सकती जब तक वह ब्रिटेन को समुद्र पर नीचा न दिव्या ले। किन्तु यह ठीक नहीं है कि “उत्तरपच्छिमी दरों का सामरिक महत्त्व घट गया है और बम्बई और कराची का हमी हिमाय से बढ़ गया है”^२। बम्बई और कराची का सामरिक महत्त्व ख़तर बढ़ गया है, किन्तु स्थल-मार्गों का महत्त्व भी हमी तक बना हुआ है। नैपोलियन के समय से आज तक उस तरफ़ से आ सकने वाली यूरोपियन सेनाओं के पैरों की आहट ने ब्रिटिश सेनाओं को उन्निद्र और बिन्निन किये रक्खा है। यूरोपियन शक्तियों में में यदि एक के हाथ में भारतवर्ष के जलमार्ग का पूरा प्रमुख हो और दूसरी के हाथ स्थलमार्ग का, तो यह बात ठीक है कि उन्न-स्वामिनी शक्ति स्थल-स्वामिनी की अपरता घोंड़े गर्च पर और घोंड़े कष्ट से भारतवर्ष तक पहुँच सकती है। किन्तु

१. बीएसएई वि०, मूवि०, १०८ ।

२. वही ।

प्रियमन के मन में चमकी गीढ़ मराठी की है। उसके उत्तरपुरव
मन्त्री बोली है जो हलही और उड़िया के बीच कड़ी, किन्तु तो भी
उड़िया का अंग, है, यद्यपि मराठी के साक्षिण्य के कारण वह
नागरी व लिपी जानती है न कि उड़िया लिपि में। अन्तर के मध्य
में एकदिवस तत्काल तेलुगु है।

महाराष्ट्र के पूर्वदक्खिन तेलुगु भाषा का समूचा क्षेत्र तेलंगण या आन्ध्र देश है। इसमें बीजागपट्टम से नेल्मूर, कडपट्ट, अनन्तपुर और कुर्नूल तक मद्रास प्रशासन के सब जिले, तथा औरंगाबाद, पारभणी, नांदेड़, भाग, उस्मानाबाद, रायचूर, निगसुगूर जिलों तथा बिदर और गुलबर्गा के पच्छिमी बड़े हिस्से का जोड़ कर समूचा हैदराबाद प्रियासन, और बरार का दक्खिनी अंश सम्मिलित है। आन्ध्र जालि का उन्नत्य भारतीय राष्ट्रिय में पहले पहल उन्नत वैदिक काल में पाया जाता है। जालि के समय तक वह और उन्नत रहता था, और इसकी राजधानी तेलसाई नदी पर थी। आ छर्नीमगढ़-३ई.मा की सीमा की आधुनिक मेल है।

महागान्धर्व के दक्षिणतः कनारी भाग का क्षेत्र कर्णाटक है। कोयुगु (कुडी) और मुमु कनारी की ही दो बान्धियाँ हैं। कर्णाटक में बीजापुर, बेलगाम, आन्ध्रप्रदेश, उत्तर और दक्षिण कनारा, कोयुगु, नीलगिरि, बन्नारी, गन्धपुर और उम्मानाबाद जिले सम्पूर्ण मैसूर, गिरासन, गुलबर्गा और बिदर जिलों का मुख्य पशुधर्मा शिमा, अन्ध्रप्रदेश जिले का मद्रास, मेसम जिले के दंगूर और कृष्णा

1. MA. 10. 1. 73 101-104.

• **संयोजकता** • **संयोजकता** • **संयोजकता**

[illegible]

शोलापुर तालुका मन्मिलित है। कर्णाटक भी बहुत पुराना प्रांत है। वस्तुतः पुराना नाम कुन्तल है। वस्तुकी एकता का विचार पहले पहल हमें कुन्तल के कादम्ब राजाओं के समय चौथी शताब्दी ई० में स्पष्ट रूप से मिलता है।

हिन्दू राज्यकाल के अन्तिम भाग में वह भारतवर्ष का अग्रणी था। नौवीं शताब्दी के अन्त या दसवीं के आरम्भ में उत्तर भारत में कर्णाटक के सैनिक विशेष पसन्द किये जाते थे, ऐसा प्रतीत होता है। मगध और बंगाल के सुप्रसिद्ध राजा धर्मपाल के तमारे उत्तराधिकारी नारायणपाल की सेना में कर्णाटक के सिपाही भरती होते थे^१, सो बात विद्वानों के ध्यान में आ चुकी है। किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि ग्यारहवीं शताब्दी के शुरू में अल-लिस्वि का परिचय देते हुए वह कहता है कि वह उस "कर्णाट देश में चतुर्थी है जहाँ से वे सिपाही आते हैं जो सेनाओं में कनार कहलाते हैं"^२—मानो कर्णाटक ही सबसे प्रसिद्ध बौद्ध कनाटे सिपाही ही थे! अल-लखनी की भारतवर्ष के उत्तरपश्चिमी प्रान्तों-तीत होता है कि उनके समय में शायद उन पंजाब में भी, जिसके निकट आज भारत भर में प्रसिद्ध हैं, कनाटे सैनिक पसन्द किये जाते थे। अधिक से अधिक हम यह कह सकते हैं कि अल-लखनी ने यह सुलतान महमूद गजनवी की सहाय के लिए गुजरात से रवाना था (१००३ ई०) ठीक उसी वरस राजेन्द्र चोल ने दक्षिण भारत पर सहाय की थी। और दोनों विजेताओं ने एक-दूसरे के सामने हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म की कनाटी सेना की शक्ति का बखाना किया, १५, ६० १०१।

तदर्थ-हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म की कनाटी सेना की शक्ति का बखाना किया, १५, ६० १०१।

लम का क्षेत्र केरल या मलबार है। लकडिव भी केरल में सम्मिलित है। तामिलनाड और केरल की स्वतन्त्र सत्ता कम से कम अशोक के समय से चली आती है। तामिलनाड में उस समय चोल और पाण्ड्य दो राज्य थे; पाण्ड्य राज्य, जिसकी राजधानी मधुरा (आधुनिक मदुरा) थी निश्चय से एक आर्य उपनिवेश था। तामिल वाङ्मय का विकास पहले पहल उसी राज्य में हुआ।

दक्खिनी प्रान्तों के विषय में यह बात ध्यान में रखने की है कि दक्खिन के भौगोलिक प्रदेश तथा ये भाषाकृत प्रान्त जिनके नाम एक ही हैं, परस्पर बहुत कुछ मिलते हैं, पर हूदू नहीं।

सिंहल द्वीप के उत्तरी अंश में तामिल बोली जाती है, और शेष में सिंहली। भूगोल और इतिहास की दृष्टि से हम पूरे सिंहल को एक प्रान्त कहते हैं। मालडिविन अर्थात् मालडिव द्वीपसमूह और मिनिहोई द्वीप भी उसी में सम्मिलित हैं।

§ २६. पच्छिम-सुराष्ट्र के प्रान्त

पच्छिमी राजस्थान के भी दिन्दी-मरुहल में चले जाने से पच्छिम-सुराष्ट्र में गुजरात और सिन्ध प्रान्त बचे। गुजरात गुजराती भाषा का क्षेत्र है।

कच्छ भी गुजरात में ही सम्मिलित है। वैसे कच्छी बोली नैटल्ले की सम्मति से सिन्धी की एक शाखा है जिसमें गुजराती मिश्रण हो गया है। किन्तु सिन्धी भाषा आजकल अरबी स्वरों में लिखी जाने लगी है और इस कारण भारतीय वर्तमान में पश्चिम कच्छ लोगों ने गुजरात को अपने पढ़ने लिखने का भाषा बना लिया है।

मराठा सब दक्खिनी भाषाओं में एक अलग की भाषा है प्रान्त है उसकी भाषा सिन्धी है जो आजकल के इन्डियन भाषा माने जाते हैं। मराठा में भी दक्खिनी भाषा है और मराठामें पञ्जाब

भारीक भेदों के बावजूद अपनी भौगोलिक स्थिति और अपने इतिहास के कारण पंजाब की प्रान्तीय एकता ऐसी स्पष्ट और निश्चिन्त है जैसी सिन्ध या गुजरात की। और पंजाब प्रान्त की इस स्वाभाविक अन्दरूनी एकता के ही कारण हिन्दी और पंजाबी आपस में ऐसी मिल जुल गई हैं—और भारतवर्ष में और कहीं भी एक बोली का दूसरी में इस प्रकार पुनरावृत्त होना नहीं हुआ—कि उनकी ठीक पारस्परिक सीमा भी निश्चित नहीं की जा सकती।

और एक तीसरी बोली सेवानामी-ब्राह्मणी सुलेमान की पदावधियों में है। हम में से गारपुरी तो हिन्दी नहीं कहलाती, पर यही कोहेग इम्पार्लमन्तों में, और मुजाना की मुकदमरान्द, केग गात्रीवा में हिन्दी कहते हैं। मन्व में वहीं मिनाइकी हिन्दी अर्थात् अपरकी हिन्दी कहलाती है। उज्जयिनी बोली द्वारा ॥ और उज्जयिनी कोदार में हिन्दी कहलाती है जो हिन्दी शब्द का दूसरा रूप है। हम वहाँ पाँच मुख्य बोलियों में से चार हिन्दी कहलाती हैं। हम शब्द की व्याख्या यह की जाती है कि बिच बरी के पश्चिम पदों की बोली परना तथा हिन्दुओं की हिन्दी है, जो हिन्दुओं की होने के कारण हिन्दी कहलाती है ! सेइ है कि डा० प्रियर्सन ने भी असामान्य की लोक में यह व्याख्या स्वीकार करती है (पृष्ठ १११)। हमें यह व्याख्या ऐसी ही लगती है जैसे टङ्गी = टङ्गरी की (अ. रा. प. मो. १९११ पृ ८०२)। वा कोल = मुभर । हिन्दी को बोलने वाले हिन्दुओं की अनेक हिन्दी। मुसलमान अधिक हैं, और बिच में उनके हिन्दी कहलाने का क्या कारण हो सकता है ? 'हिन्दी' और 'हिन्दी' का मूल मने ॥ एक है—मिन्नु । लक्षण यह बिच-कटि की बोली होने के कारण हिन्दी कहलाना है, और यह भी ठीक है कि यह 'हिन्दुओं' की अर्थात् बिच-कटि के निवासियों की बोली है। मन्मुन वहाँ हिन्दी शब्द का यही अर्थ बना पाईए, क्योंकि दूसरे अर्थ

१९०१ की गणना में डे० इ० खों की कुलाची सहमील के दक्खिन भाग में कामरानी गाँवों में कुछ बलोची बोलने वाले थे जो १९११ में हिन्दकी बोलते थे। उनके बाद अब मुलेमान के पच्छिम तरफ लोरालाई के पठान प्रदेश के ठीक माथ लगी हुई घरखान नदमील में भी हिन्दकी का पूरा अधिकार हो गया है। पञ्जाब और अफगानिस्तान के बीच का यह बलोच कीटा का प्रकार धीरे धीरे मिटता जा रहा है।

४. उत्तरपञ्चमी अरु —

(१) अफगानस्थान — दूरों बोलान के उत्तर त्रि० बलोचिस्तान के के० ग-पिगीन, लोरालाई और भोब जिले तथा सरकारी पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के वजोरिस्तान कुर्रम अफ़्गीनी तीरा और मोहमन्द इलाके वस्तुतः ब्रिटिश अफगानिस्तान हैं। हम जिसे अफगान प्रदेश कहते हैं उसमें और आजकल के अफगानिस्तान में गड़बड़न हो, इसलिए हम असल अफगानिस्तान को अफगानस्थान कहेंगे। हमारा अफगानस्थान बामनध में पक्थ-कम्बोज देश है। उस में जहाँ पुरोक्त त्रि० अफगानिस्तान गिनता चाहिए, वहाँ कार्किरिस्तान या कपिश देश वास्तव में उसका अंग नहीं है। ओरेह के नीचे (पश्चिम) और मध्यशर के उत्तरपच्छिम हरी-रुद का घाटी अर्धान ग्राम हेरात को और सीमान को भी कार्किरि में गिनता अधिक ठीक है। हिन्दूकुश के उत्तर तरफ बलाव-प्रदेश अथवा अफगान तुर्किस्तान अब जनता की दृष्टि से परम कम्बोज नहीं रहा किन्तु कम्बोज देश का जो अरु अब रुमी पंचायन-मध में है उसे भी अफगानस्थान में गिनना चाहिए।

अफगान लोगो की भाषा परतो या परतो है। वे अपने को अफगान नहीं कहते वे 'फ' उच्चारण दीनदी कर सकन, उनके तिम क्रयोलो का लोग अफ़्गीनी कहते हैं वे खुद उसे अप्रादी कहते हैं परतो या परतो भाषा विभिन्न अफगान कबीलो में एकना का

मुख्य सूत्र है, हमें यातने वाले परतान या पल्लान कहलाते।
 जिसमें हजार पठान रहते थे। सब पठानों या परतानों
 पल्लो-भाषियों की एक परम्परागत अनिश्चित आधार-पद्धति
 भी है जिसे वे परतू-वाली या पल्लू-वाली कहते हैं और जिसमें
 राजपूतों के शक्ति-स्वाद में बड़ी समानता है। लेकिन
 अफगानिस्तान की जनता में हजारा, नाजिक आदि जातियाँ भी हैं
 जो पठानों या पल्लो नशी घोसनी, और घटून में अफगानों ने भी
 शायद अपनी भाषा छाड़ कर फारसी अपना ली है। पठान लोग
 उन्हें पार्सीवान कहते हैं। अरबानिस्तान की राजभाषा भी फारसी
 है। इसीलिए हेरान जैसे राज्य को अफगानिस्तान में गिना जाय या
 फारिस में भी कहना कठिन हो जाता है। तो भी पठानों और
 पार्सीवानों का दौरा एक है: अफगानिस्तान के पार्सीवान जिन्हें
 फारिस वाले अफगानों में गिनते हैं ईरानियों से भिन्न हैं।

अफगानिस्तान का काकिरिस्तान या कपिरा प्रदेश जनता
 और इतिहास की दृष्टि से अफगानिस्तान का भाग नहीं है। ठीक
 ठीक करे तो काबुल नदी के दक्खिन निमशर भी कपिरा का ही
 अंश है। कपिरा के पूरव बाजौर, स्वात, कुनर और घुसुसुड का
 इलाका प्राचीन पच्छिम गान्धार देश है: उसका पूरव गान्धार
 अर्थात् उत्तरपच्छिमी पञ्जाब से अत्यन्त पुराने समय से सम्बन्ध
 है: किन्तु १५ वीं शताब्दी ई० में हम पर घुसुसुड पठानों ने
 पहले पहले बदाई की, और तब से पठान लोग काबुल नदी के
 उत्तर बढने लगे, वहाँ के पुराने निवासी स्वामी लोग हजारों चले
 गये घुसुसुड इलाका अब पेशावर जिसे में है, हमने अब भी
 गान्धार और हिंदू को जाना जाना है। पंटे कह चुके हैं कि
 गान्धार काशट और बलू जिसे पञ्जाब का ही अंश है इनो
 का बाजौर, स्वात और कुनर का भाग जिन्हें निम्न का

‘यागिस्तान’ कहा जाता है, कपिश में अधिक सम्बन्ध है।

जिसे हमने कम्बोज देश कहा है, उसमें आजकल उन्नीस बोलियाँ बोलੀ जाती हैं और उनका परतो-परतो में निकट सम्बन्ध है। कम्बोज उन्हें तुम्हार देश के पच्छिमी अंश बदख़्शां में भी पहले उनमें विचनी कोई बोलती ही थी, लेकिन अब बदख़्शां लोगों ने फारसी अपना ली है। तुम्हार या कम्बोज की जनता अब ताजिक कहलाती है। कम्बोज देश का मुख्य भाग आज रूसी पंचायत-संघ के अन्दर है, पर बाल्ख में वह अफगानस्थान का एक अंश है।

आमू नदी के दाहिने बदख़्शां के उत्तर बोधारा प्रान्त में तो तुर्कमान और उजबेक रहते हैं, किन्तु आमू के मोड़ के पूरब पामीर में ताजिक। उस मोड़ के उत्तरी छोर से, अर्थात् बदख़्शां के उत्तरपूरबी छोर से आमू की धारा अरफ़्शां नदी के स्रोत से उसके साथ साथ और आमू के दाहिने दाहिने ताजिकों की एक बस्ती समरकन्द शहर के करीब तक पहाड़ों में चली गई है—उस बस्ती और बदख़्शां के बीच आमू-कोठे का उजबेकिस्तान एक फने की तरह घुस गया है। अग्यत्र मैंने यह दिखलाया है^१ कि अरफ़्शां घाटी के ये ताजिक सम्भवतः प्राचीन भारत के ‘परम कम्बोज’ हैं। वे लोग आर्य और आर्य-भाषी हैं, किन्तु बलख-बोलाग में तुर्क-जातीय जनता के आ जाने से उनका देश दूसरे भाषों में लगभग कट गया है, केवल बदख़्शां के उत्तरपूरबी और पामीर के उत्तरपच्छिमी छोर से वह धारा सा जुड़ा रह गया है। परम कम्बोजों का वह देश जनता की दृष्टि से तो अफगानस्थान का

१. यागिस्तान का अर्थ है भगवत्क देश। पञ्जाबी लोग इन एलाकों को यागिस्तान ही कहते हैं।

२. पृष्ठ २१०। दे० परिशिष्ट १ (७६, ३)।

करना अभां कठिन है।
 यह कहा जा सकता है कि अफगानस्थान पठानों पाम
 और ताजिकों का देश है। पठानों और पार्सीयानों को मिल
 अफगान भी कहा जाता है; कम्बोज देश का जब तक लोग
 न थे तब तक वहाँ के निवासियों को कम्बोज से आई हुई प
 अथ वह शब्द केवल उत्तर भारत की कम्बोज से आई हुई प
 पिरादरी के लिए रह गया है। इस प्रकार अफगानस्थान क
 अफगाना और कम्बोजों का देश भा कह सकते हैं।
 पठान वास्तव्य इतिहास को एक अत्यन्त प्राचीन जाति हैं।
 पन्था का सबसे पड़ता उल्लेख श्रुवेद में राजा सुदास की
 नहार्ई के प्रकरण में है^१। वहाँ उनके साथ भलाना (भलानसः)
 अलित्र, विपाणों, और शिव जातियों के भी नाम हैं, जिनमें से शिव
 तो पन्था के पड़ोसों थे, और बाकी जातियाँ शायद पन्थ-वर्ग
 की ही रही हों। भलाना के नाम का अवरोध दुरा बालान के नाम
 में होने का सन्देह वैदिक विद्वानों ने किया है^२। शिव या शिवि
 लोग श्रुवेद के एक उल्लेख से पन्थों के पड़ोसों माने जाते हैं,
 और हमारी शिवि = तिवि शिनाख्त के अनुसार आज तक
 तिवि पन्थ-देश की ठीक सीमा पर है। पठान लोग अपने देश
 की परम्परागत सीमा आज तक वसां तिवि को मानते हैं।
 श्रुवेद के बाद दारयबहु (शरा) के अभिलेख में पन्थों और
 उनकी सजातीय कई जातियों के नाम आते हैं। वसां राजा के
 नानों वैय दिरोदोत ने अमीतों या अमृतों का उल्लेख किया है
 और आजकल के अमीतियों के पूर्वज ही थे^३। पुराणों में भारत-

१. श्रुवेद १०, १८०।

२. केनन हिस्टरी ऑफ़ इण्डिया वि० १, पृ० ८२।

३. भा. भा. प. १० पृ० ५।

वर्ष के पच्छिम-स्वरूप को अपरान्त कहा है। पर उत्तरायण के देशों में भी एक अपरान्त का नाम है। वायुपुराण में, जिसका पाठ मायः और पुराणों की अपेक्षा शुद्ध होता है, उसके वज्राय 'अपरीताः' पाठ है। पात्रीटर कहते हैं कि वह पाठ गलत है। मेरा कहना है कि 'अपरीता' ही ठीक पाठ है, और 'अपरान्ताः' गलत है। उत्तरायण के अपरीत आधुनिक अपरीदियों के पूर्वज थे। भारतवर्ष के पहले 'युइची' या अपिक राजा कुजुल कपस कुपण के जाले प्रदेशों में चीनी ऐतिहासिकों ने 'पो-ता' का भी नाम लिखा है, वह 'पो-ता' पक्ष का ही रूपान्तर प्रतीत होता है।

पाणिनि मृत्ति मेंरे विचार में पठान नहीं पंजाबी थे, क्योंकि उनकी जन्मभूमि स्वात-काठे में पठानों का सम्बल बहुत नया है। किन्तु चीन में पहले पहल बुद्ध का उपदेश ले जाने वाले करप मार्तग और धर्मरत्तिन पिक्खु अफगानस्थान के थे, या कपिश-करमीर के, या पंजाब के गान्धार-देश के, इस का निश्चय करना लगभग असम्भव है। गुप्त राजाओं के गुद और महापान के आचार्य वसुबन्धु और आसंग भी शायद पाणिनि की तरह पेशावरी पंजाबी ही थे न कि पठान, यद्यपि उनके विषय में बड़ी निश्चित बात नहीं कही जा सकती, क्योंकि पेशावर के दक्खिन पठानों का प्रदेश बहुत दूर नहीं है। मध्यकालीन और अर्वाचीन इतिहास में भी पठानों का बड़ा हिस्सा है। अर्वाचीन भारतीय साम्राज्य का जन्मदाता शेरशाह, जिसका भारतवर्ष के राष्ट्र निर्माताओं में एक प्रमुख स्थान है, पठान ही था।

इन सब उदाहरणों में अब हमने पठान शब्द का प्रयोग किया है, सब हमारा मतलब अफगानस्थान के नवाबी से नहीं, प्रत्युत असल परतान-गल्तान लोगों से है। परतान-गल्तान भाषा के क्षेत्र में

१. वायु १० ४२, ११२. लाङ्कदेव पु० ५३, ३६. तथा उम पर पार्श्व २१ की दिग्गता ५० ३०३ पर।

दृष्टि में भी उन्हें एक पान्त गिनना चाहिए । उन दोनों के बीच पञ्चाय का पश्चिम गान्धार और वरसा (मुरास युग का पञ्चाय) प्रदेश कान की लम्ह खसा गया है, और उसी में से उन दोनों के बीच का मुख्य सरस खसता जाता है । बहुत बार वह भी करमीर के अर्ध-गुहा है, तो भी भाषा और जाति की दृष्टि में वह पञ्चाय का ही है ।

हाउ प्रांते ने मित्र दिया है' कि दरद देश की पूरबी सीमा मित्र-राष्ट्री में नराय के पनगपिद्धिमी भाग में कम से कम स्थानों के प्राय सम्पत्ता नक थी प्रहो अब निरवनी भाषा में अतिरिक्त कर लिया है । वही क लाग अब भी दरद हैं, पर कर्तो न निरवनी रग दग और भाषा अयन्ता भी है ।

कष्टवार के दिन मन्त्रपूजा बहुत ही लाभकारी होती है। इनका सम्बन्ध यदि किसी भाषा में हो तो लोगों की राजस्थानी बोली में। इनमें से बहुत से लोग मानते हैं कि बाबियाँ पच्छिम पहाड़ी, तब गढ़वाल-कुमायूँ की भाषा पहाड़ी और नेपाल की पहाड़ी पहाड़ी कहलाती है। यन्त्रा के दिन मन्त्रपूजा में पञ्चांगी बोली होती है, और वहीं से पूरा एक तरह का पहाड़ी में ही बनता और कुछ मन्त्रों के बीच पहाड़ी का भाषा भी होती है। इस प्रकार वह मन्त्र-पूजा का सम्बन्ध पश्चिम दिशा में पञ्चांग का होता है। यन्त्रा का सम्बन्ध पश्चिम दिशा में पञ्चांग का होता है, और मन्त्रपूजा का सम्बन्ध पश्चिम दिशा में पञ्चांग का होता है, और मन्त्रपूजा का सम्बन्ध पश्चिम दिशा में पञ्चांग का होता है।

(१) अन्तर्वेद का अर्थ,—इस प्रदेश में से कुमाऊँ-गढ़वाल और कनौर का अन्तर्वेद के साथ बहुत ही पुराना सम्बन्ध है। गढ़वाल में ही वह प्रयागों की परम्परा शुरू होती है जो अन्तर्वेद के पूरबी छोर प्रयागराज पर जा कर पूरा होती है। और गंगा के ध्यान जिस प्रकार गढ़वाल में है, जमना के उसी तरह जोगसार, जुन्वल और क्युंठन में, तथा सरसुतो के सरमौर में हैं। कुमाऊँ गढ़वाल ही प्राचीन इलाहूत-वर्ष है, और यदि किन्नर = कनौर की शिनाखन ठीक है तो कनौर तक का प्रदेश भी उस में सम्मिलित था, क्योंकि इलाहूत-वर्ष में गन्धर्व और किन्नर रहते थे। पार्सीटर ने दिखलाया है कि वही अन्तर्वेद के आरम्भिक आर्थों का पवित्र देश और स्वर्ग था, और इलाहूत से आने के कारण ही शायद वे ऐल कहलाते थे^१।

इन प्रदेशों के उत्तरपच्छिम सतलुज पार के सुकेत, मंडी और कुल्लू प्रदेशों का भी भाषा की दृष्टि से पंजाब की अपेक्षा इन्हीं प्रदेशों से और हिन्दीखण्ड से अधिक सम्बन्ध है। इसी कारण उन्हें अन्तर्वेद में गिनना चाहिए।

इस बात के प्रमाण हैं^२ कि मध्य काल के इतिहास में कीरप्राम अर्थात् वैजनाथ तक पहाड़ों में कनौज-साम्राज्य की सत्ता थी। करमीर के राजा मुत्तापीड ललितादित्य (७३३-७६९ ई०) ने कन्नौज

१ प्रा० भा० दे० भ०, पृ० २१८, ३००।

२, मगध के राजा धर्मपाल ने चक्रायुध की जब कन्नौज की गरी पर बैठाया (लगभग ८०० ई०), तब क्रिय सामन्तों ने उसे अपना अभिपति स्वीकार किया उसमें कीर का नाम भी है, दे० धर्मपाल का खजूर-मपुर-नामपत्र, एपिग्राफिया इण्डिका, ४, पृ० २५२। कीरप्राम = वैजनाथ, यह वैजनाथ के दो अभिलेखों से सिद्ध है, दे० एपि० इ०, १, पृ० १०४, ११२।

आठवाँ प्रकरण

भारतवर्ष की प्रमुख भाषायें और नरलें



§ ३३. आर्य और द्राविड .

भारतवर्ष के प्रान्तों की वर्ण करतें हुए हमने प्रत्येक प्रान्त की भाषा और बोली का उल्लेख किया है। इन भाषाओं के मूल शब्दों और धातुओं की, तथा व्याकरण के ढांचे की—अर्थात् संज्ञाओं और धातुओं के रूप-परिवर्तन के, उपसर्गों और प्रत्ययों की योजना के, और वाक्यविन्यास आदि के, नियमों की—परस्पर तुलना करने से बड़े मरुच के परिणाम निकले हैं। हिन्दी की सब बोलियों का तो आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है ही, उसके अनतिरिक्त आममिया बंगला और उड़िया का, मगधी और सिन्धली का, गुजराती और मिन्धी का, पंजाबी और हिन्दी का, तथा पहाड़ी बोलियों अर्थात् नेपाल की गोरखाली भाषा और कुमाऊँ-गढ़वाल की तथा जौनसार से बम्बा तक की सब बोलियों का—अर्थात् हिन्दीखण्ड, पूरब खण्ड पश्चिम खण्ड और उत्तर-पश्चिम-खण्ड की सब मुख्य भाषाओं, दक्खिन खंड में मराठी और सिन्धली, तथा पर्वतखंड में नेपाल से बम्बा तक की बोलियों का—एक दूसरे के साथ गहरा नाता है। “बंगाल से पंजाब तक . समूचे देश में, और राजपूताना, मध्य भारत और गुजरात में भी जनता का समूचा शब्दकोष, जिसमें साधारण वर्तुष के लगभग सब शब्द हैं, उच्चारण-भेदों को छोड़ कर एक ही है।”^१ इन सब

या नस्ल का मूल और एकमात्र घर दक्खिन भारत ही है। एक द्राविड बोली, माहूर्, भागतर्ष के पच्छिमी दरवाजे पर है, इस से यह कल्पना की गई थी कि द्राविड लोग भारतवर्ष में उत्तर पच्छिम से आये हैं। किन्तु उस कल्पना के पक्ष में कुछ भी प्रमाण नहीं है। ऐसा भी हो सकता है कि माहूर् लोग दक्खिन भारत के समुद्रतट के पच्छिमी देशों के साथ होने वाले व्यापार के मिलमिले में उत्तरपच्छिम जा पसे एक द्राविड उपनिवेश को सूचित करते हो।

विद्यमान द्राविड भाषाओं चार वर्गों में बँटी हैं—(१) द्रविड वर्ग, (२) आन्ध्र भाषा, (३) बिचला या मध्यवर्ती वर्ग, और (४) माहूर् बोली। तामिल, मलयालम और कनाडी, तथा कनाडी की बोलियाँ तुलु और कोडगु ('कुर्ग' की बोली) सब द्रविड वर्ग में हैं। तेलुगु या आन्ध्र भाषा अकेले एक वर्ग में है। इन परिष्कृत भाषाओं की उत्तरी सीमा मद्रास का चान्दा जिला है। बिचले वर्ग में सब अपरिष्कृत बोलियाँ हैं जो दूमरी मध्य भाषाओं के पयाह में द्वीपों की तरह घिर कर रह गई हैं। वे किसी भी एक पूरे प्रान्त की बोलियाँ नहीं, और उनमें से बहुत सी धीरे धीरे मर रही हैं।

उन बोलियों में से सब से मुख्य और प्रसिद्ध गोंडी है। गोंडी अपनी पड़ोसन तेलुगु की अपेक्षा द्रविड वर्ग की भाषाओं से अधिक मिलती है। उसके बोलने वाले गोड लोग कुछ आन्ध्र में, कुछ उड़ीसा में, कुछ बगड में, और कुछ चेदिकोराल और मालवा की सीमा पर हैं, किन्तु सब स अधिक चेदिकोराल में हैं। गोड एक बहुत प्रसिद्ध जाति है, और उनकी बोली गोंडी कहलाती है, जिसकी ॥ कोई लिपि है, न कोई साहित्य या वाङ्मय। परन्तु 'ग हाँ' एक भ्रमजनक शब्द है। क्योंकि बहुत से गोड सब अपने पड़ोस की आर्यभाषा से मिली लिखड़ी बोली बोलते हैं,

दोनों देशों की प्राचीन परिपाटी के अनुकूल है। उस वंश में उस बड़े वंश के लिए अनेक नाम गढ़े गये हैं, और उन में से मुख्य हैं हिन्द-यूरोपी तथा हिन्द-जर्मन। हिन्द-यूरोपी शब्द हमें निकम्मा लगता है, क्योंकि उसमें आर्य वंश के तीन मुख्य घरों, अर्थात् भारत ईरान और युरोप, में से दो का नाम आता है और तीसरे का रह जाना है। हिन्द जर्मन शब्द का जर्मनी में बहुत प्रयोग होता है, और उसमें यह गुण है कि वह आर्य वंश की उन दो शाखाओं के नाम से बना है जो पूरव और पश्चिम के अन्तिम किनारों पर रहती हैं तथा जिनमें से एक इतिहास में उस वंश की सब से प्राचीन और दूसरी सब से नवीन जानी है। वह पाणिनीय व्याकरण के ग्रन्थाकारों के नमूने पर गढ़ा गया है। आगे हम हिन्द-जर्मन शब्द का प्रयोग करेंगे, और यदि आर्य शब्द को हम अर्थ में लेंगे तो वंश शब्द उसके साथ लगा कर ही जड़ी अकेला आर्य शब्द आयागा, वही उस में आर्य शब्द ही समझना होगा।

हिन्द-जर्मन परिवार के सब लोग हिमी बचपन के उमाने में एक साथ रहने थे, सो लगभग निश्चित है। वह मूल पर बर्ता था, इस विषय पर बेदिमाव विवेचना हुई है, हिन्दु अभी तक बमका अन्त नहीं हुआ, और न बहुत कास तक हो सकेगा। हमारे विषय में उसका विरोध सम्भव नहीं है। उस वंश की विभिन्न शाखाओं के अलग हो जाने के बाद भी आर्य रहस्य की शाखाएँ बहुत समय तक एक जगह रही, सो सो निश्चित है। वह जगह कहीं भी हम पर भी बेहद विचार है जिसे हम यहाँ नहीं छोड़ सकते। इस बात पर काइ सम्भावना आयेगी कि समूचे इतिहास के अध्ययन के बाद ही बनना चाहिये, न कि पहले ही एक सम्मति रख कर इतिहास रचने बैठना। इतिहास वही हमें करके छोड़ने चाहिये जो करने का सामर्थ्य और अधिकार है जो

इतिहास का अध्ययन करने से पहले भारतवर्ष की भाषा और नस्ल-विषयक विद्यमान स्थिति की छानबीन से ही निकल आते हैं।

आधुनिक निरुक्तिशास्त्रियों ने इस विषय में जो सिद्धान्त निश्चित किये हैं, वे ये हैं। हिन्द-जर्नन वंश का एक बड़ा स्कन्ध है आर्य। उस स्कन्ध की तीन शाखायें प्रतीत होती हैं—आर्यावर्ती, ईरानी और द्रदी या द्रद-जातीय।

§ २६. द्रदी शाखा

द्रदी शाखा की भाषायें अब कपिश-करमीर भर में बची हैं, किन्तु पहले उत्तरपूर्वी अफगानस्थान में और अधिक फैली हुई थीं, और काबुल नदी के दक्षिण भी थीं जहाँ अब इनकी एक भाष बोलती बडीरिस्तान में बची है। उसके अतिरिक्त हिन्दकी और सिन्धी पर द्रद-जातीय भाषा का स्पष्ट प्रभाव दीखता है। पंजाबी पर वह प्रभाव अपेक्षया कम है, और राजस्थान के मालवा प्रदेश की भीली बोलियों में भी थोड़ा बहुत मिलकता है। करमीरी भाषा यद्यपि द्रदजातीय है, तो भी उस में आर्या-वर्ती रंगत कुछ हद तक आ गई है।

आधुनिक द्रदजातीय भाषाओं के तीन वर्ग हैं—(१) कपिश या काकिर वर्ग, (२) खोवार वर्ग, और (३) द्रद वर्ग। कपिश वर्ग में कपिश या काकिरस्थान की, और खोवार वर्ग में खैराल की बोलियाँ सम्मिलित हैं। खान द्रद वर्ग में रिना, करमांग, और कोरस्थान (मैयों) नाम की बोलियाँ हैं। इन में से इन आधुनिक द्रदों का ठेठ बोला है। करमीरी नाम की भाषा में अब में मुख्य और एकमात्र पराकृत भाषा है।

ठेठ द्रद प्रदेश में हुआ और नगर नाम की बोलियों में अद्यत्त गण्डक नदी के उत्तरपूर्वी घाट हुआ का घाटियों में द्रद की नाम की एक बोल है वह भाषाविज्ञानियों के लिए

शताब्दी ई० पू०) के अभिलेखों में पाया जाता है। उसी का मध्यकालीन रूप सासानी राजाओं (तीसरी-छठी शताब्दी ई०) के समय की पहलवी थी, तथा आधुनिक रूप विद्यमान फारसी है। मदी प्राचीन मदी या मन्द (Media) प्रदेश की तथा ईरान के पूर्वी-पश्चिम के प्रदेशों की भाषा थी। पारसी धर्म का पवित्र ग्रन्थ अवस्ता उसी भाषा में है। उसके मध्यकालीन रूप का कोई नमूना नहीं मिलता। उसकी आधुनिक प्रतिनिधि कुर्दिस्तान की बोलियाँ तथा अफगानस्थान की परतो गल्चा आदि हैं।

भारतवर्ष के क्षेत्र में मदी वर्ग की मुख्यतः परतो और गल्चा भाषाएँ ही आती हैं। परतो के विषय में बहुत देर तक यह विवाद रहा कि वह आर्यावर्ती भाषा है या मदी। सन् १८९० ई० तक आधुनिक नैरुद्धों का रुझान उसे आर्यावर्ती मानने का था, किन्तु उसके बाद से अब उसे निश्चित रूप से मदी माना जाता है। एक गल्चा बोली युइद्दा चितराल के सामने दोरा जोर द्वारा हिन्दूकुश के दक्खिन भी उतर आई है, और चितराल और दोरा के बीच लुइद्दा घाटी में बोली जाती है। उसकी रंगत चितराल को दरद जानाँय खोवांग बोली में भी कुछ पड़ गई है। परतो बोलने वालों का मन्द्य अन्दाज़न ५० लाख है। अफगानस्थान के पारसीवानों और गल्चा-भाषियों की ठीक मन्द्य नहीं मिल सकती पर वह अन्दाज़न १०० लाख होगा।

उनके अतिरिक्त अफगानस्थान में शायद कुछ नुकी बोलने वाले भी हैं। तुर्क और इराक़ी तानाशाहों का मत है जो आर्य जाति से निकलने वाला है। अफगानस्थान और भारतवर्ष पर उनके बहुत अधिकार हुए हैं, पर यहाँ जो तुर्क-इराक़ी आये उनके बराबरी में से अफगानस्थान के उक्त कुछ नुकी-भाषियों की जाँच नये आर्य भाषाएँ अपना चुके हैं।

§ ३८. आर्यावर्ती शाखा

आर्यावर्ती शाखा बहुत फैली हुई है। आजकल के निरुक्तिशास्त्री उसे तीन उपशाखाओं में बाँटते हैं—भीतरी, बिचरी और बाहरी। भीतरी उपशाखा के दो वर्ग हैं—केन्द्र वर्ग और पहाड़ी वर्ग। केन्द्र वर्ग का केन्द्र बड़ी पछोड़ी हिन्दी है जिसका महत्त्व हम पिछले प्रकरण में दिखला चुके हैं। पछोड़ी हिन्दी में, ऐसा कि कह चुके हैं, पाँच बोलियाँ हैं—कन्नौजी, मुन्नेसी, मजभासा, लखी बोल्ली और बांग्ला। इन सबका भी केन्द्र मजभासा है। और लखी बोल्ली, जिन के आधार पर कि राष्ट्रमाग हिन्दी बनी है, पछोड़ी हिन्दी का पंजाबी में इकतता हुआ रूप है। प्राचीन बौद्ध और शास्त्रीय साहित्य तथा औरसेनी साहित्य भी पछोड़ी हिन्दी-संघ की बोलियाँ थीं।

हमने मगध हिन्दी-संघ को मध्यमवहल कह कर उसके चारों तरफ मगध वर्ग के प्रांतों का बँटवारा दिया है। यह बँटवारा भौगोलिक और व्यावहारिक दृष्टि से है। निरुक्ति-शास्त्रीय बँटवारा उससे कुछ बदलता है। उसके अनुसार केन्द्र-वर्ग में पछोड़ी हिन्दी के अनिश्चित पंजाबी, राजस्थानी और गुजराती के तीन मुख्य भागों आती हैं। पंजाबी केवल पूरब पंजाब की। राजस्थानी और गुजराती के बीच मालवी बोलियाँ हैं, लखी का एक रूप मगधेसी भी है; मगधेसी अमल में माजरा का भाग है, जब महाराष्ट्र में आ जाने से उसमें बहुत क्रियने की भाषा मगधी हो गई है। मालवी और मगधेसी भी केन्द्र वर्ग में हैं। राजस्थानी और गुजराती चार पाँच की वरम वरसे एक ही भाषा थीं। माजरा और गुजरात के इन्धाल से भी परस्पर बड़ा सम्बन्ध रहा है।

लखनऊ की राजस्थान से बिना दूरी दक्षिण-पश्चिम दक्षिण-पश्चिम दिशा में एक भाग रहन है जिसके दक्षिण

एक मंजी हुई वाङ्मय-मन्त्र भाषा है जो अब वर्मा के तट पर पगू, धतोन और पम्हस्टे शिलों में पाई जाती है। स्मेर कम्बुज दरा के मुख्य निवासी स्मेर लोगों की भाषा है। उसमें भी अच्छा वाङ्मय है। मोन और स्मेर लोग एक ही जाति के हैं। पलौंग और वा उत्तर वर्मा की जंगली बोलियां हैं। निकोबारी निकोबार द्वीप की बोली है जो मोन और मुण्ड बोलियों के बीच कड़ी है। खासी बोलियां भी उसी शाखा की हैं और वे आसाम के खासी-जयन्तिया पहाड़ों में बोली जाती हैं। भारतवर्ष के क्षेत्र में मोन-स्मेर शाखा को केवल खासी बोलियां, और यदि निकोबार को भारत में गिनना हो तो निकोबारी है। खासी बोलियां बोलने वाले कुल २ लाख ४ हजार, और निकोबारी ८ हजार पिछली गणना में थे। निकोबार के उत्तर अन्दमान द्वीप हैं, जहां के लोग अभी तक बहुत ही असभ्य दरा में हैं, और जिनकी बोली भी एक पहेली है। पुदुचास्की की तरह उसका भी संभार के किसी वंश से सम्बन्ध नहीं होत पड़ता।

मुण्ड या रावर शाखा की बोलियां विन्ध्यमेखला या उसके पड़ोस में विद्यमान हैं। उनमें से मुख्य बिहार में छोटा नागपुर तथा सन्थाल-परगना (विन्ध्यमेखला के पूर्वी छोर) की खेर-बारी बोली है, जिसके सन्थाली, मुण्डारी, हो, भूमज, कोरवा आदि रूप हैं। खेरबारी के कुल बोलने वाले ३५ लाख हैं, जिनमें सन्थाली के २२.३ लाख मुण्डारी के ६.३ लाख, और हो के ५ लाख हैं। ध्यान रहे कि खास सन्थाल-परगना में सन्थाल लोग छोटा नागपुर से १८ वीं शताब्दी ई० में ही आये हैं। मुण्डारी बोलने वाले मुण्डालोग ओरोंब लोगों के साथ एक ही प्रदेश में मिले जुले रहते हैं। कूरकू नाम की एक दूसरी बोली जिसके बोलने वाले कुल १.२ लाख हैं विन्ध्यमेखला के पच्छिमी छोर पर भालवा (राजस्थान) और चेदिछोराल की सीमाओं पर पचमड़ी

लिए 'शावर' के तद्धित 'शावर' को अधिक सुबोध और स्पष्टार्थक पाते हैं। उत्तर भारत के ग्रामीण लोग इन जातियों को कोल कह कर भी याद करते हैं। कुछ लेखक उन्हें 'कोलरी' (अंग्रेजी-कोलरियन) भी लिखने लगे थे, जो कि एक निरर्थक भ्रान्त और लगव शब्द है।

मुण्ड या शावर बोलियाँ बोलने वालों की कुल संख्या सन् १९२१ में ३६.७३ लाख थी; उनमें खासी, सिङ्गल के मलायुओं और निकोबारियों की संख्या जोड़ देने से कुल आग्नेय-भाषियों की संख्या ४२ लाख होती है।

यह पक्का बड़े भारके की बात है कि पूर्वी नेपाल की तथा चम्पा में अलमोड़ा तक की कुछ पहाड़ी बोलियों में, जिनका हम अभी उल्लेख करेंगे, मुण्ड या शावर भाषाओं का तल्लुट स्पष्ट और निश्चित रूप से पकड़ा गया है। उन बोलियों में से सब से अधिक उल्लेख-योग्य कनौर की कनौरी या कनावरी है। अरब और द्राविड भाषाओं पर भी शावर प्रभाव हुआ है, निरोप कर बिहारी हिन्दी और तेलुगु में उसकी मूलक प्रतीत होती है।

आग्नेय जातियों की स्थिति आज भारतवर्ष में और हिन्द-चीनी प्रायद्वीप में भी भले ही गौण हो, भारतवर्ष के पिछले इतिहास में उनका बड़ा स्थान है। समूची सुवर्णभूमि और सुवर्णद्वीपों में पहले वे ही फैले हुए थे, बरमी, खामी और आनामी लोगों के पूर्वज उस समय और उत्तर के पहाड़ों में रहने थे। इन्हीं आग्नेय जातियों में भारतवासियों ने अपने उपनिवेश स्थापित कर और अपनी सभ्यता और सभ्यता की कलम लगा कर उनके देश को दूसरा भारतवर्ष बना दिया था। उनकी सभ्यता, उनकी भाषा और उनके वाङ्मय पर भारतवर्ष का बड़ा छाप आज तक लगी है।

§ ४२. चीन-किंगत या तिब्बत-चीनी वंश

हिमालय के उत्तरी हाशिये और पूरबी छोर में तथा उसके

उसकी तीन शाखायें अभी तक मालूम हुई हैं—(१) तिब्बत-हिमालयी, (२) आसामोत्तरक, तथा (३) आसाम-बर्मी या लौहित्य। तिब्बत-हिमालयी शाखा में तिब्बत की मुख्य भाषायें और बोलियाँ तथा हिमालय के उत्तरी ओर की कई छोटी छोटी मोटिया बोलियाँ गिनी जाती हैं। लौहित्य या आसामबर्मी शाखा के भी नाम से ही प्रकट है कि उस में बर्मा की मुख्य भाषा तथा आसाम-बर्मा-सीमान्त की कई छोटी छोटी बोलियाँ शामिल हैं। आसामोत्तरक शाखा दोनों के बीच आसामोत्तर पहाड़ों में है, उसकी कल्पना और नाम अभी आरम्भ है; यह निश्चित है कि उसकी बोलियाँ उक्त दो शाखाओं में नहीं समाती, किन्तु वे सब मिल कर स्वयं एक शाखा हैं कि नहीं इसकी खानगी अभी नहीं हुई; वह केवल एक भौगोलिक इकाई है।

तिब्बत-हिमालयी शाखा में फिर तीन वर्ग हैं—एक तो तिब्बती या मोटिया जिस में तिब्बत की मंजी-सॅवरी वाङ्मय-सम्पन्न भाषा और बोलियाँ सम्मिलित हैं, और बाकी दो वर्ग हिमालय की उन बोलियों के हैं जिनकी बनावट में सद्तर तिब्बती नीच दीख पड़ती है।

सानवीं शताब्दी ई० में जब तिब्बत में भारतीय प्रचारक बौद्ध धर्म ले गये तब उन्होंने ने वहाँ की भाषा को भी मौजा सँवारा और उसमें समूचे बौद्ध तिपिटक का अनुवाद किया। तिब्बती भाषा में अब अच्छा वाङ्मय है, और वह है सब भारत से गया हुआ। उस भाषा की कई गोल बोलियाँ भारत की सीमा पर भी बोली जाती हैं। उन्हें दो खण्डों में बाँटा जाता है—एक पच्छिमी जिसमें बाल्तिस्तान या बोल्लोर की बाल्ती और पुरिक बोलियाँ तथा लक्ष्म की लक्ष्मी बोली गिनी जाती है। समूचा बोल्लोर तथा लक्ष्म का पच्छिमी अर्ध पहले दरद देश में सम्मिलित था, और वहाँ की मोटिया-भाषी जनता का बहुत भा अर्ध बाल्ति में दरद है। बाल्ती-पुरिक और लक्ष्मी के कुल मिला कर बोलने वाले

दीख पड़ता है, और रंग की पहचान को बिलकुल निकम्मा नहीं कहा जा सकता।

खोपड़ी की लम्बाई-चौड़ाई भी एक अच्छी परख है। एक पंजाबी या अन्तर्वेदिये और एक बंगाली का सिर देखने से ही बंगाली का सिर चौड़ा दीख पड़ता है। यदि खोपड़ी की लम्बाई को १०० माना जाय और चौड़ाई उसके मुकाबले में ७७.७ या उससे कम हो तो मानुषमिति वाले उसे दीर्घकपाल (dolichocephalic) नमूना कहते हैं, यदि चौड़ाई ८० तक हो तो मध्यकपाल (mesocephalic), और यदि और अधिक हो, तो दृक्कपाल या बृक्कपाल (brachycephalic)। १०० लम्बाई पर जितनी चौड़ाई पड़े उसे कपाल-मान (cephalic index) कहा जाता है।

इसी प्रकार एक नासिका-मान (nasal index) है। नाक की लम्बाई को १०० कहें, तो चौड़ाई जो कुछ होगी वही नासिका-मान है। वह मान जिनका ७० से कम हो, अर्थात् नाक नुकीली हो, वे सुनास (leptorrhine) कहलाते हैं, ७० से ८५ तक मध्यनास (mesorrhine), और ८५ से अधिक वाले स्थूनास या पृथुनास (platyrrhine)। चौड़ी या नुकीली नाक के सुने या तंग नथनों का अन्तर साधारण आँख को भी मरलता से दीख जाता है।

दोनों आँखों के बीच में नाक के पुन का कम या अधिक उठान भी उसी तरह मनुष्य की मुखकृति में फट नजर आता है। कई जातियों की नाकें ऊपर चिपटी सी होती हैं। नाक के उस चिपटेपन को संस्कृत में 'अवनाट' कहते हैं, उससे चलटा प्रनाट और दोनों के बीच का मध्यनाट शब्द गढ़ा यह

१. गले नासिकायाः संज्ञायां टटप्रनाटमृषटव, प्राणिनीय
महाश्वयी, २, १, ११।

सकता है। दोनों आँखों की थैलियाँ जिन हड्डियों में हैं, उनके मध्य में दो बिन्दु लगा कर उनके बीच की दूरी को १०० कहा जाय, और फिर नाक के पुल के ऊपर से वही दूरी मापने से उसका पहली दूरी से जो अनुपात आय उसे अबनाट-मान (orbtonasal index) कहते हैं। वह ११० से कम हो तो अबनाट (platyopic) चेहरा, ११२.९ तक हो तो मध्य-नाट (mesopic)। वह हिसाब खास भारतवर्ष के लिए रखा गया है, अन्यथा १०५.५, ११०.०, और उससे ऊपर, ये तीन सीमाएँ हैं। अबनाट का चेहरा स्वभावतः चौड़ा दीर्घता है, और गालों की हड्डियाँ उभरी हुईं।

आदमी का कद या होठ भी नानुपमिति की एक परत है। ५७० सतांशमीटर (५ फुट ७ इंच) से अधिक हो तो लम्बा, १६५ (५' ५") से १७० तक औसतार्थिक, १६० (५' ३") से १६५ तक औसत से नीचे, और १६० से कम हो तो नाटा।

मुँह और जबड़े का आगे बढ़ा या न बढ़ा होना एक और लक्षण है। एक प्रकार समहनु (orthognathic) है जहाँ जबड़ा माथे की सीध से आगे न बढ़ा हो या बहुत कम बढ़ा हो, दूसरा प्रहनु (prognathic) जहाँ वह बढ़ा हुआ हो।

संसार भर की जातियों में तीन मुख्य नमूने प्रसिद्ध हैं। एक गोरी जातियाँ, जिन में आर्य या हिन्द-जर्मन वंश, सामी (Semitic) और हामी (Hamitic) सम्मिलित हैं। सामी के मुख्य प्रतिनिधि अरब और यहूदी तथा कई प्राचीन जातियाँ हैं। हामी के मुख्य प्रतिनिधि प्राचीन निग्र (ईजिप्ट) के लोग थे। गोरे रंग के सिवा ऊँचा होल, भूरे या काले मुलायम सीधे या लहरदार केश, दाढ़ी-भूँछ का खुला बगना, प्रायः दीर्घ कपाल, नुकीला चेहरा, नुकीली लम्बी नाक, सीधी आँखें छोटे दाँत और छोटा हाथ उनके मुख्य लक्षण हैं। गोरा रंग जलवायु

दीप्त पड़ता है और रंग की पहचान को बिलकुल निरुद्ध नहीं कहा जा सकता।

मोरही की लम्बाई-चौड़ाई भी एक अच्छी परम है। एक बंगाली या अन्धबेदिये और एक बंगाली का सिर देखने में ही बंगाली का सिर थोड़ा दीप्त पड़ता है। यदि मोरही की लम्बाई को १०० माना जाय और चौड़ाई उसके मुकाबले में ७७.७ या उससे कम हो तो मानुषमिति वाले उसे दीर्घकपाल (dolichocephalic) समुता कहने हैं यदि चौड़ाई ८३ तक हो तो मध्यकपाल (mesocephalic), और यदि और अधिक हो तो द्रुमकपाल या वृणकपाल (brachycephalic)। १०० लम्बाई पर त्रिजनी चौड़ाई ७७.७ को कपाल-मान (cephalic index) कहा जाता है।

इसी प्रकार एक नासिका-मान (nasal index) है। नास की लम्बाई को १०० कहें, तो चौड़ाई ओ कुछ होगी वही नासिका मान है। वह मान मिनहा ७० से कम हो, अर्थात् नास नुकीली हो, से सुनास (leptorhine) कहलाने है, ७० से ८३ तक मध्य-नास (mesorhine), और ८३ से अधिक वाले अधुनास या वृणुनास (platyrhine)। चौड़ी या नुकीली नास के मूँचे या तंग मथनों का अन्तर माथारस आँग को भी बतलाना में दीप्त जाता है।

दोनों आँखों के बीच में नास के पुच्छ का कम या अधिक दूरत्व भी इसी तरह मनुष्य की मुखचर्चन में बहर बहर को जाता है। बड़े आँखों की नासें ऊपर बिखरी थी होती हैं। नास के कम विस्तार को मण्डन में अचलकट कहने हैं, समे अचलकट और दोनों के बीच का मध्यकट राज्य गढ़ा जा

१. इन वर्गिकरण नकलें *हैन्डबुक ऑफ़ एन्थ्रोपॉलॉजी*, एन्थ्रोपॉलॉजिकल सोसायटी, इ. १, १११

सकता है। दोनों आँखों की यैलियाँ जिन हड्डियों में हैं, उनके मध्य में दो सिन्दु लगा कर उनके बीच की दूरी को १०० कहा जाय, और फिर नाक के पुल के ऊपर से वही दूरी मापने से उसका पहली दूरी से जो अनुपात आय उसे अबनाट-मान (orbitonasal index) कहते हैं। यह ११० से कम हो तो अबनाट (platyopic) चेहरा, ११२.९ तक हो तो मध्यनाट (mesopic)। यह हिसाब खास भारतवर्ष के लिए रक्खा गया है, अन्यथा १०७.५, ११०.०, और उससे ऊपर, ये तीन सीमाएँ हैं। अबनाट का चेहरा स्वभावतः चौड़ा दीखता है, और गालों की हड्डियाँ उभरी हुईं।

आदमी का कद या शीश भी मानुषमिति की एक परख है। १७० सेंटीमीटर (५ फुट ७ इंच) से अधिक हो तो लम्बा, १६५ (५' ५") से १७० तक औसतार्थिक, १६० (५' ३") से १६५ तक औसत से नीचे, और १६० से कम हो तो नाटा।

मुँह और जबड़े का आगे बढ़ा या न बढ़ा होना एक और लक्षण है। एक प्रकार समहनु (orthognathic) है जहाँ जबड़ा माथे की सीध से आगे न बढ़ा हो या बहुत कम बढ़ा हो, दूसरा प्रहनु (prognathic) जहाँ वह बढ़ा हुआ हो।

संसार भर की जातियों में तीन मुख्य नमूने प्रसिद्ध हैं। एक गोरी जातियाँ, जिन में आर्य या हिन्द-आर्य वंश, सामी (Semitic) और हानी (Hamitic) सम्मिलित हैं। सामी के मुख्य प्रतिनिधि अरब और यहूदी तथा कई प्राचीन जातियाँ हैं। हानी के मुख्य प्रतिनिधि प्राचीन निग्र (ईजिप्ट) के लोग थे। गोरे रंग के सिवा ऊँचा होल, भूरे या काले मुलायम सीधे या सहरदार केश, दाढ़ी-भूँड़ का खुला उगना, प्रायः दीर्घ कपाल, नुकीला चेहरा, नुकीली सम्भी नाक, सीधी आँखें छोटे दाँत और छोटा हाथ उनके मुख्य लक्षण हैं। गोरा रंग जलवायु

दीख पड़ता है। और रंग की पहचान को बिलकुल निकम्मा नहीं कहा जा सकता।

खोपड़ी की लम्बाई-चौड़ाई भी एक अच्छी परख है। एक पंजाबी या अन्तर्बेदिये और एक बंगाली का सिर देखने से ही बंगाली का सिर चौड़ा दीख पड़ता है। यदि खोपड़ी की लम्बाई को १०० माना जाय और चौड़ाई उसके मुकाबले में ७७.७ या उससे कम हो तो मानुषमिति वाले उसे दीर्घकपाल (dolichocephalic) नमूना कहते हैं, यदि चौड़ाई ८० तक हो तो मध्यकपाल (mesocephalic), और यदि और अधिक हो तो द्रव्यकपाल या घृत्तकपाल (brachycephalic)। १०० लम्बाई पर जितनी चौड़ाई पड़े उसे कपाल-मान (cephalic index) कहा जाता है।

इसी प्रकार एक नासिका-मान (nasal index) है। नाक की लम्बाई को १०० कहें, तो चौड़ाई जो कुछ होगी वही नासिका-मान है। वह मान जिनका ७० से कम हो, अर्थात् नाक नुकीली हो, वे सुनास (leptorrhine) कहलाते हैं, ७० से ८५ तक मध्य-नास (mesorrhine), और ८५ से अधिक वाले मधुसनास या पृथुनास (platyrrhine)। चौड़ी या नुकीली नाक के सुने या संग भयनों का अन्तर साधारण आँख को भी मरलना से दीख जाता है।

दोनों आँखों के बीच में नाक के पुच्छ का कम या अधिक उठान भी उसी तरह मनुष्य की सुखाकृति में झट नजर आ जाता है। कई जातियों की नाकें ऊपर चिपटी सी होती हैं। नाक के उभ चिपटेपन को मंस्कृत में 'अधनाट' करते हैं, उससे उभटा प्रनाट और दोनों के बीच का मध्यनाट शब्द गढ़ा जा

१. नरें नासिकायाः संज्ञायां दृष्टव्यनाटप्रभटाः, पाणिनीय अष्टाध्यायी, ४, १, ११।

सचदा है। दोनों धोरों की धैलियों जित हड्डियों में हैं, उनके मध्य में दो सिन्दु लगा कर उनके बीच की दूरी को १०० परा बाय, और फिर नाट के पुल के ऊपर में वही दूरी नापने में उसका पहली दूरी में जो अनुपात थाय उसे अबनाट-मान (normal index) करते हैं। पर ११० में पाम हो तो अबनाट (platyopne) पेशा, ११२५ तक हो तो नय-नाट (hyperpne)। यह हिमाद राम भारतवर्ष के लिए रक्खा गया है, अन्यथा १०७४, ११००, और उनमें ऊपर, के तीन बीमारों हैं। अबनाट का पेशा सम्भावित चौड़ा दीर्घता है, और गाली की हड्डियों उमरी हुईं।

आदमी का बंद पा टोकर भी जनुबमिनि की एक परत है।
 १७० दादासमीर (५ फुट ७ इंच) में अदिह हो भी लगता,
 १६२ (४' ३') में १७० तक चौनकादिह, १६० (४' २')
 में १६२ तक चौनका में मोटे, चौन १६० में कम हो तो लम्बा ।

मुँह और अगले का छोले बड़ा का न बड़ा होना यह और
 लक्षण है। यह प्रकार मज्जन्तु (१० : २० : १०) है जहाँ
 जड़दा नाथे की सीढ़ से छोले न बड़ा हो या बहुत कम बड़ा
 हो, इनका मज्जन्तु (१० : २० : १०) जहाँ यह बड़ा हुआ हो।

[illegible]

के भेद से गेहूँवाँ भी हो जाता है। दूसरी पीली या मंगोली जातियाँ हैं। उन में चीन-क्रियत, मंगोल, तातारी (तुर्क-टुए) आदि सम्मिलित हैं। उनके सीधे रुखे केश, बिना दाढ़ी-मूँह के चौड़े और चपटे चेहरे, प्रायः वृत्त कपाल, ऊँची गाल की हड्डी, छोटी और चिपटी नाक (अवनाट), गहरी आँखें, पलकों का झुकाव ऐसा जिससे आँखें तिरछी दीख पड़े, तथा मध्यम दाँत होते हैं। तीसरा नमूना काफ़ी, हम्बियाँ या नीग्रो (Negroid)^१ नस्ल का है। उनके ऊन जैसे गुच्छेदार केश, दीर्घ कपाल, बहुत चौड़ी (स्थूल) चिपटी नाक, मध्यम दाढ़ी-मूँह, मोटे बाहर निकले हुए होंठ, बड़े दाँत और लम्बा हाथ मुख्य लक्षण हैं। अफ्रीका के अनिश्चित नीग्रोई नस्ल प्रशान्त महासागर के कुछ द्वीपों में हैं। भारतवर्ष में उनके प्रतिनिधि केवल अन्धमानों हैं जो अत्यन्त नाटे हैं। लेकिन वे वृत्त कपाल हैं।

उक्त तीन मुख्य नमूनों का कलटफेर दूसरी अनेक जातियों में है। कपालमिति (Craniofacial type) के तत्परों में यह पाया गया है कि एक ही वंश की कुछ शाखायें दीर्घकपाल और दूसरी वृत्तकपाल हो सकती हैं, लेकिन जिस का जो लक्षण है वह बहुत स्थिर रहता है। आर्य वंश में ही स्नाय और केनल संग कपाल हैं। पीली जातियाँ मुख्यतः वृत्तकपाल हैं परन्तु अफ्रीका के एम्पीमो दीर्घकपाल हैं।

भारतीय आर्य और द्राविड दोनों दीर्घकपाल हैं। इन्होंने बंगाल और उत्तरपूर्वी सीमान्त पर वृत्तकपाल आर्य और द्राविड किरान प्रभाव के मूलक हैं। उसके मिश्रण मिश्र को दक्षिण भारत के पश्चिमी तट पर भी वृत्तकपाल है यह पश्चिम में मलयकपाल।

१ नीग्रो ()

अध्याय नवमः १११

१११ १११ १११ १११ १११ १११ १११ १११ १११ १११

करना पसंदी है। या तो ऊँची ठंडी पहाड़ियों पर रहने और या पड़ोम के किरातों के मिश्रण के कारण उनका रंग-रूप शायदों में बहुत कुछ भिन्न हो गया है। उनका रंग प्रायः गोरा, गेहूँवा, या लाली लिए हुए चादामी, और भिन्नियों का चेहरा विरोध कर सुन्दर गोलमटोल भरा हुआ होता है।

किरातों में वे सब लक्षण हैं जो हमने मंगोली नस्ल के बारे में हैं। कद अत्यंत छोटा या औसत से कम, रंग पिक्काइट निंबे हुए, दाढ़ी-मूँछ न के बराबर, घोंखें निगल्ली, नाक मुड़ीली से पीढ़ी तक सब किम्म की किन्तु चिपटी अचनाद, गाल की हड्डी उभरी हुई, और चेहरा नाक-नाक की इस बनावट के कारण पपटा।

उत्तरपच्छिम सीमान्त के अकगानों और पंजाब के जाटों आदि में आर्योंवर्णी आर्यों की अवस्था विरोध लम्बी नाक पाई जाती है। अकगानों से मराठों तक पच्छिम की सब जातियों में वृत्त कपाल भी पाया जाना है। वृत्तरूपाल किरातों तथा पच्छिमी छोर के इन वृत्तरूपालों का मुख्य भेद यह है कि किरात जहाँ अचनाद है, वहाँ वे पच्छिमी जातियाँ प्रनाद हैं। उत्तरपच्छिम की विरोध लम्बी नाक और समूचे पच्छिम के वृत्तरूपालों की व्याख्या शक मिश्रण से की जानी है। नई खोज ने बतलाया है कि शक भी एक आर्य जाति थे; आश्रकल उनका खालित नमूना करी नही बचा, मध्य एशिया में वे हलों-तुर्कों में पुनः मिश्र कर नष्ट हो गये हैं, और भारतवर्ष और ईरान में अपने अन्य आर्यों से उनके मिश्रको आदि पर उनके जो चित्र मिलते हैं उनमें अमापागण लम्बी नाक शकों का विरोध सिद्ध दीप्त पड़ता है। वे टूनों के पड़ोम में रहने थे, या तो उनसे मिश्रण होने के कारण और या आर्यों की कई अन्य शाखाओं की तरह शायद वे वृत्तरूपाल थे। शकों की भाषा का कोई सिद्ध भारतीय भाषाओं

दनों में आर्य फलक भर है। सिंहा के दक्खिन भाग में हि
आर्य-द्रविड मिश्रण है।

भारतीय जनविज्ञान, मानुषमिति और कपालमिति का
अध्ययन अभी बिलकुल आरम्भिक दशा में है। अभी इतिहास
के अध्ययन को उसमें जैसा प्रकाश नहीं मिल सकता जैसा
भाषाओं की पढ़नाल से मिलता है। मोटे तौर पर भाषाओं की
पढ़नाल हमें जिन परिणामों पर पहुँचाती है, जनविज्ञान और
मानुषमिति उनमें विशेष भेद नहीं खालती।

६ ४७. भारतवर्ष की विविधता और एकता

भारतवर्ष एक विशाल और विस्तृत देश है। ऊपर के पृष्ठों
से हमने उसकी भूमि और उस के प्रदेशों, उसकी भाषाओं,
जन्मा, लिपियों, वर्णमाला और वाङ्मय का विवेचन और
दिग्दर्शन किया है। उस दिग्दर्शन से उसकी विविधता प्रकट है।
उसके विभिन्न प्रांतों और प्रदेशों में से कोई समथर मैदान है तो
कोई पठार या पहाड़ी दून कोई अत्यन्त सूखा रेगिस्तान है तो
किमी में हृद में ज्यादा पानी पड़ता है। अनेक किस्म के
घन-वायु, वृक्ष-वनस्पति और पशु-पक्षी उसमें पाये जाते हैं।
उसमें रहने वाले लोग, उनका रहन-सहन और उनकी बोद्धि
भी अनेक प्रकार की हैं।

भारतवर्ष के इन भेदों के रहते हुए उसमें गहरी एकता भी है।
हिमालय से डेरा-बसमाईनखा तक समूचा उत्तर भारत एक ही
विशाल मैदान है। कसल के मौसम में हम उसके एक छोर से
दूसरे छोर तक सहस्रहाते सेतों में ऐसे रास्ते से जा सकते हैं
जिसे एक भी कंकर या पत्थर का टुकड़ा कष्टकित्त न करे। यह
तो एकता देने वाली एकता है। हम के अतिरिक्त, दक्खिन में
समुद्र और उत्तर में हिमाद्रय होने के कारण सारे भारत में एक
ज्यास किम्ब की अनुपपत्ति भी बन गई है। गर्मी की ऋतु में

समुद्र से भाप बादल बन कर कटती और हिमालय की तरफ जाती है ; हिमालय की उंचाई की बादल पार नहीं कर सकते, वे लीट कर घूम जाते हैं । इस प्रकार हमारी बरसात दोनों गौर नदियों में पानी आता है । बरसात के अनुसार और अनुष्ठान आती हैं । यह अनुष्ठानों का ग्राम मिलमिला भारतवर्ष में ही है, और हमारे सारे देश में एक सा है । भारतवर्ष की उस सुन्दर हृदयन्त्री का जिसके कारण समूचा देश स्पष्टतः एक हीय पड़ता है, पहले ही उल्लेख कर चुके हैं । हिमालय और समुद्र की उस हृदयन्त्री से ही ऋतु-पद्धति की समानता पैदा होती है ।

भारतवर्ष की जनता की जाँच में हमने देखा कि उसमें मुख्यतः आर्य और द्राविड दो नस्लों के लोग हैं ; किन्तु उन दोनों का सम्मिश्रण सृष्ट हुआ है और उस मिश्रण में थोड़ा सा दौक शाबर और किरात का भी है । आज भारतवर्ष की कुल जनता में से आर्यभाषी अन्दाजन ७६४ फी सदी, द्राविडभाषी २०६ फी सदी, और शाबर-किरात भाषी मिलाकर ३० फी सदी हैं । किन्तु जनता और भाषाओं की विवेचना में हमने यह भी देखा कि द्राविड भाषायें आर्य साँचे में ढल गई हैं, और उन्होंने आर्यावर्ती वर्णमाला अपना ली है । यह देश मुख्यतः आर्यों का है, और उन्होंने इसे पूरी तरह अपना कर इस पर अपनी संस्कृति की पकी छाप लगा दी है । दूसरी संस्कृतियाँ, विशेषतः द्राविड, नष्ट नहीं हो गईं, पर आर्यों के रंग में पूरी तरह रंगी गई हैं । बाद में जो जातियाँ आती रहीं, वे तो बिलकुल आर्यों के अन्दर हضم हो जाती गईं । आर्य और द्राविड का भारतवर्ष के इतिहास में इतना पूरा सामञ्जस्य हो गया है कि आज सारे भारत का एक वर्णमाला और एक वाङ्मय है, जो सभ्यता और संस्कृति की एकता का बाहरी रूप है । हम यो कह सकते हैं कि

भारतीय संस्कृति का प्राण भायें है तो उपादान द्राविड, और आज उन दोनों को भूलग नहीं किया जा सकता । भारतीय संस्कृति एक है, और इसलिये भारतीय जाति एक है ।

किन्तु यदि भारतीय जाति एक है तो उसकी एकता भाषा उसके सामाजिक और राजनैतिक जीवन में प्रकट क्यों नहीं होती ? भारतवर्ष के प्रदेशों, भाषाओं और जनता की विद्यमान अवस्था का खानपीन से जहाँ हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यहाँ संपात्मक राष्ट्रीय एकता की बढ़िया सामग्री उपस्थित है, वहाँ उसकी विद्यमान राजनैतिक और सामाजिक अवस्था पर जो कोई एक नजर भी डालेगा उसे दाँख पड़ेगा कि उसकी जनता में जातीय या राष्ट्रीय एकता का सर्वथा अभाव है । ऐसा खान पड़ता है कि वह बत्तीस करोड़ का अमपट माने तुल्य जातों फिरकों और कबीलों का एक ढेर है, जिस समूचे ढेर में अपनी एकता का कोई वैतन्य और सामूहिक जीवन की कोई चेष्टा नहीं है । बहुत लोग इस स्थिति को देख कर कह देते हैं कि यह एक देश और एक जाति नहीं है । तो फिर क्या वह छोटे छोटे प्रदेशों या कबीलों का समुच्चय है ? क्या उन छोटे छोटे प्रदेशों में भी, जिनमें भौगोलिक और अन्य दृष्टि में पूरी एकता है, सचेष्ट सामूहिक जीवन के कोई लक्षण हैं ? यदि किसी छोटे से प्रदेश में भी वह उल्टा सचेष्ट सामूहिक जीवन होता तो वह अपनी स्वाधीनता को संसार की बढ़ी से बढ़ी शक्ति के मुकाबले में भी बनाये रख सकता । यह बात नहीं है कि भारत में छोटे छोटे जीवित समूह हों और उन सबको मिला कर जिस जन-समुदाय को भारत कहा जाता है उसी में एकता का अभाव हो । सामूहिक जीवन की मन्दता न केवल उस समूचे समुदाय में प्रत्युत उसके प्रत्येक टुकड़े में भी वैसी ही है ।

जब इन भारतीय जनता की विद्यमान अवस्था की
 कर रहे हैं, तब इन बात को भाँसों से जोखता कैसे कर
 है कि आज संसार की सब सभ्य जातियों के बीच यहाँ
 मात्र मुख्य गुलाम जनता है ? और उसके उस गुलाम
 पर जरा सा विचार करने से भी यह स्पष्ट दीख पड़ता है,
 भारतवर्ष के लोग न केवल जातीय चैतन्य से रहित हैं, बल्कि
 साधारण मनुष्य-धर्म से भी वे एकदम पवित्र हो चुके हैं। उन
 आत्म-सन्मान का भाव तो मानो नर हो चुका है। उनके समान
 की रचना ऐसी है जिससे आपस में अपने से कमजोर पर जो
 उत्तम करने और बदरस के जाने गिड़गिड़ाने की उन्हें आज
 ही हो जाती है, और इस आदत के कारण पराई गुलामी
 हुए का बोझ भी उनके कंधों को कुछ नाज़ून नहीं होता। दूसरे
 का साधन बनने और उसे कमजोर का शिकार कर ला देने में
 उन्हें बिल भर संकोच नहीं होता; उनका अपना कोई धर्म, कोई
 साध्य, मुख्य नाँसारीक तुलों के सिवाय और अपनी जान-बिरादरी
 का टिकने के मुख्य शायर में अपने को उँचा मान मचने और
 कमजोरों को नीचे दिसा करने के सिवाय कुछ है ही नहीं।
 यदि वह नाँसारीक तुलों से भी उन्हें बाँधित कर दिया जाए तो
 भी वे संगठन के बभाव, साहस की कमी और कायरता के
 कारण विरोध में नहीं उठ सके होते, मनुष्य ऐसी दरिद्रता और
 गलाबज में 'शान्ति' और 'सन्तोष' के साथ अपने 'जीवन'
 को—कामना अपनी दोस्तों मिला को—पलटते जा सकते हैं कि
 जिसे हन कर विराम करना बाँधन होता है। ऐसी अवस्था में
 भी वे आपस में निष नहीं मचने, कलहें और अपने पर
 आक्रमण और पर दूसरे पर आक्रमण नहीं है।

मनुष्य वह जान बूझने का उस अवस्था में है जिसके
 साधन बनने अपने 'धर्म' अपने अपना निरुद्ध मध्य है।

सामूहिक हित और कल्याण का चिन्तन करने वाला, समूचे समूह में एक व्यक्तित्व साने और सामूहिक आपत्तियों का निवारण करने वाला कोई अंग हममें है ही नहीं। इसी कारण अपने समूह का भेद पराये को देना, उसके साथ मिल कर अपने समूह के विरुद्ध आचरण करना और पराये का साधन बनना यहाँ ऐसी नि शंकता निर्लज्जता और उदरदृढता से होता है जैसा संसार की और किसी जाति में नहीं हो सकता। न तो ऐसे काम करने वाला स्वयं इन बातों में कोई पाप मानता है, न उसके पड़ोसी उसे घृणा से देखते हैं, और यदि हमके पास पैसों हों—जो कि इन कामों से हमें प्राप्त आते हैं—तो वह उसी समूह में जिसके विरुद्ध कि वह आचरण करता है पेट पेट कर बिखर सकता है। सबसे बड़ा अचरज तो यह है कि ऐसा पण्डित दक्षिण जीवन बिताने हुए भी वे लोग अपने दिव्य को मुक्ताने के लिए लोह-परलोह और आत्मा-परमात्मा की पर्षा कर क अपने को बड़ा परमात्मा मान सकते हैं, ठीक उसी तरह जैसे एक गंजेड़ी गलीब गन्गी में धँसा हुआ दूर दूर के मयने देखता है।

इस अवस्था का कारण क्या है? भारतीय इतिहास और समाजशास्त्र का प्रत्येक विचारशील विद्यार्थी मुँह में बड़े का न करे, कुछ न कुछ कारण इस अप्राकृतिक अवस्था का अवगमन में सोचता है, और उसी के अनुसार भारतीय इतिहास की व्याख्या करता है। बहूनों का यह विश्वास प्रतीत होता है कि भारतीय नस्ल में या जलवायु में कोई मनामन त्रैकालिक दुर्बलता है। यदि ऐसी बात है, यदि सामूहिक जीवन इस भूमि या इस नस्ल में कभी बन ही नहीं सकता है, तो एकता की यह उत्पत्ति सामग्री जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है क्या केवल घुलाघर न्याय में देना ही गड़ है? चेतन और निरुत्तर सामूहिक वेश्याओं

के बिना वे अवस्थाएँ कभी उत्पन्न न हो सकती थीं। किन्तु वैसी सामूहिक चेष्टाओं के रहते फिर विद्यमान दरिद्रता कैसे आ गई ?

इन्हीं समस्याओं का उत्तर पाने के लिए हमें भारतीय इतिहास की सावधानी और सचाई से छानबीन करने की जरूरत है। यहाँ इस विवाद को विस्तार के साथ नहीं उठाया जा सकता, केवल संक्षेप से और आग्रह के बिना मैं अपना मत फाँट देता हूँ। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास—लगभग ५५० ई० तक—एक खिन्दा जाति के सचेष्ट जीवन का घृतान्त जान पड़ता है। भारतीय मध्यता और संस्कृति की दृढ़ नींवें उसी काल में रखी गईं। उसके बाद मध्य काल में धीरे धीरे भारतीय जाति की जीवन-धारा मन्द हो गई, उसमें प्रवाह और गति न रही। प्रवाह के अभाव से सड़ोद पैदा होने लगी, और सड़ोद से कमजोरी। अनेक प्रकार के सचेष्ट और जीवित आर्थिक व्यावसायिक राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक आदि समूह, जिनके समुच्चय से वह जाति बनी थी, पथरा कर निर्जीव और अचल जातें बनने लगे, और प्रवाह गति तथा पारस्परिक विनिमय ज्यों ज्यों और क्षीण होते गये, त्यों त्यों उन जातों के और दुकड़े होते गये, और एक सजीव जाति का पथराया हुआ पंजर घाँकी रह गया जिसे कि जात-पात में जकड़ा हुआ विद्यमान भारतीय समाज सूचित करता है। ऐसा निर्जीव समाज-संस्थान बाहर के हमलों का मुकाबला न कर सकता था और इसके वे परिणाम हुए जिनका होना कभी टल न सकता था।

किन्तु ध्यान रहे कि वह समाज-संस्थान रोग का निदान नहीं प्रत्युत लक्षण है, असल रोग तो जीवन की क्षीणता और गति का घन्द हो जाना ही है। वह समाज-संस्थान एक प्राथमिक समाज की अवस्था को सूचित नहीं करता, प्रत्युत एक परिपक्व समाज के जीर्ण पथराये सूख गये देह को; और इसी

ये हेमाद्रि पहादियां लंगल गर-संगल
है प्राचीन हम को करे दे सुख-दान प्रसन्न' ।

हिंसरे भूतपूर्व पुरुषों ने मरुत हिंसरे विषम से काम
विम पर देवों ने अमुरों को जीता अपना कर परा नाम.
हिंसरे धेनु अरव-भार पनी करते हैं मुग्ध-भोग निशाम
तेज मौन हम को कर देंगे वह भू बड़भगी सविलास

इसी प्रकार अगले काल में फिर वे कहते थे—

पुण्यस्थल प्रतापी तनकां वनलाते हैं देव इशार
स्वर्ग-सुखि-दाता भारत में जन्में जो मनुष्य-जन धार ।

धर्म और संस्कृति के आधारों की तरह, कालिदास जैसे कवियों ने भी भारतीय एकता का आधार बनाये रक्खा । कर्नठ राजनीतिज्ञ, सैनिक, योद्धा और शासक वसु आधारों को किस प्रकार परिणाम करने का जतन करते रहे, जो भारतवर्ष का इतिहास बदलता है ।

१. गिरिपते सर्वत्र विनयान्तरात् ॐ हृदये स्तोत्रम् ।

—यही १२.१.११।

५. वरदा ह्रीं ह्रीं ह्रीं विवस्त्रिं वरदा देवा बभ्रुरात्मवर्धनम् ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

—उद्दे १२.१.

१. जन्म सं. हिसाबानुसार १९४५ मे मृत्युमुखिना.

संस्कृत-विश्व-विद्यालय, काशी

— १५५ —

§ ४६. उसकी अपने पुरखों और उनके ऋण की याद

अपनी मातृभूमि को उक्त प्रकार से अपने पुरखों की कम
स्थली के रूप में याद करना अथवा अपने देश के साथ साथ
अपने पुरखों की याद करना राष्ट्रीय एकता और इतिहास की
एकता का दूसरा आवश्यक लक्षण है।

केवल भूमि की ममता से, उसे अपना देश और एक देश
मम करने से, इतिहास में एक-राष्ट्रीय जीवन पैदा नहीं होता, जब
नक कि उस भूमि में अपने से पहले हो चुके पुरखों की अनेक
पीढ़ियों को भी ममतापूर्वक अपना समझ कर याद न किया
जाय, और अपने बाद आने वाले बंराजों की पीढ़ियों के लिए भी
वही ममता अनुभव न की जाय। क्योंकि इतिहास एक मनुष्य
समाज के किसी एक समय के अथवा जीवन का ही वृत्तान्त नहीं है
किन्तु अनेक पीढ़ियों की सिलसिलेवार और परम्परागत जीवन-
धारा का चित्र है। और पिछली पीढ़ियों का जीवन-कार्य और
अरित हमारे जीवन के प्रत्येक पहलू में मुनिवाद के रूप में
विद्यमान है।

हम खरा सा भी सोचें तो हमारे पुरखों का हम पर कितना
पहचान दीप्ति है ! अपने देश की यह जो शक्ति आज हम
देखते हैं यह ऊन्हीं की मेहनत का नतीजा है। जिस
भूमि से हमें अपना भोजन मिलना और जो हमें रहने के लिए
आश्रय देती है, उसे पहले पहल ऊन्हीं ने अपने भुजबल से जीता
और शेती के साधक बनाया था। आज भी दो बार बस
हम उनकी सम्माल करना छोड़ दें तो जंगली घाम और
बूटियों उमें घेरें और जंगली जन्तु उस पर मेंबराने लगें !
भारतवर्ष की इसी मरी भूमि जिसमें आज हजारों लाखों सेत,
बगीचे, ताजा नहरें, गाँव, बस्तियाँ, राह, राम्ते, किले, कारखाने,
राजधानियाँ, बाजार और बन्दरगाह विद्यमान हैं, कभी इसी

उरह के ढरावने जंगलों से घिरी थी, और उसे हमारे पुरखों ने साफ़ किया और बसाया या। प्रत्येक पीढ़ी प्रयत्नपूर्वक उसकी सम्भाल और रक्षा न करती आय तो उसे फिर जंगल घेर लें या पराये लोग हथिया लें। सार यह कि अपने देश की जो बाह्य शक्त आज हमें दीख पड़ती है, वह हमारे पुरखों के लगातार अनथक परिश्रम और जागरूकता का फल है।

और क्या केवल बाह्य भौतिक वस्तुओं के लिए हम अपने पुरखों के ऋणी हैं ? हमारे समाज-संगठन, हमारी प्रथाओं और संस्थाओं, हमारे रीति-रवाजों, हमारे जीवन की समूची परिपाटी नहीं नहीं, हमारी भाषा, हमारी बोलचाल और हमारी विचारशैली तक पर हमारे पुरखों की छाप लगी है। जिन विद्याओं और विज्ञानों को सीख कर आज हम शिषित कहलाते हैं उनके लिए भी तो हम उन्हीं के ऋणी हैं।

यह ऋण का विचार धार्मिक रंग में रंगा हुआ हमारे देश में बहुत पुराना चला आता है। हम पर देवों, पितरों, ऋषियों और मनुष्यों^१ का ऋण है,—ऋषियों का ऋण हमारे ज्ञान की पूंजी के रूप में—और उस ऋण को चुकाने का उपाय यह है कि हम अपनी सन्तति पर वैसा ही ऋण 'बढ़ा' दें ! लेकिन पूर्वजों का ऋण वंशजों को देकर चुकाया जा सकता है इस विचित्र कल्पना से सूचित होता है कि पूर्वजों और वंशजों के सिलसिले में एक साँता—एक धाराबाहिक एकात्मकता—जारी है। ऋण पाने

१. बाद में केवल तीन शब्द गिने जाते थे, पर शुरु में चौदा—मनुष्यों या पदोसियों का—या बा. दे० जनपथ ब्राह्मण १ ।

यहाँ यह विचार अपने सर से पड़ने रूप में दर्ज है।

परिशिष्ट

१.

प्राचीन भूगोल-विषयक नई बातें

—:६:—

(१) कम्बोज देश

प्राचीन भारत के इतिहास में कम्बोज एक बहुत प्रसिद्ध देश था। किन्तु आज तक उसकी ठीक पहचान नहीं हुई थी। उसकी ठीक दिनांक करने का दिठना महत्त्व है वह इसीसे प्रकट होगा कि इस परिशिष्ट में शुक्तिमान् पर्वत के सिधाय प्राचीन स्थानों की जितनी पहचानें की गई हैं, उन सबकी कुंजी कम्बोज की पहचान से ही मिली है, और प्राचीन भूगोल और इतिहास के अनेक पुँघले पद उसकी पहचान से स्पष्ट हो गये हैं।

कूरो ने नेपाली अनुसूति के अनुसार कम्बोज को विन्धत का कोई भाग माना है^१, किन्तु डा० प्रियर्सन दिसला चुके हैं कि वह कोई न कोई ईरानी आर्य-भाषी प्रदेश था। इसीलिए माधारण्यवा विद्वान लोग कम्बोज का अर्थ पूरबी अफगानिस्तान करते हैं। किन्तु पूरबी अफगानिस्तान के एक एक प्रदेश की छह इन पूरी छानबीन करते हैं तो कम्बोज को उनमें से किसी पर भी नहीं बैठा सकते। मध्य-घाटी से अशरोदी-तीरा तक पक्य देश था, फिर कापुल नदी के उत्तर कपिश और गान्धार। कम्बोज ऊँचीयों ने से किसी का समानार्थक रहा हो सो कोई नहीं कहता।

१. भाषाशास्त्रियों द्वारा (बीर प्रतिमा-कथा), पृ० ११४, विष्णु ग्रन्थ का अर्थ हिन्दुओं की हडिप। अर्थ स०. पृ० १६१ पर निर्देश।

सरम भूगोल-लेखकों के अनुसार वह चामू की घासों 'बघाव' (आधुनिक वन) और अकसाव (आधुनिक अकसू या मुग़ाँर) के बीच का होना पड़ेगा । उस की सीमा 'राज्या-परेरा' की ठीक बगरी सीमा के साथ साथ सटी हुई है ।

कहण ने कम्बोज और तुऋग्यार के नाम अलग अलग दिये हैं । चीनी इतिहास-लेखक बनसाने हैं कि 'ताहिया' लोग पहले चीन के कानसू प्रान्त की पच्छिमी सीमा पर रहते थे, फिर वे बलु-कोटे में आये । १० साफ़ांट का मत है कि चीनियों के ताहिया और अरबों के तुग्यार एक ही हैं । इस प्रकार तुग्यार लोग बलु-कोटे पर बगरी राजाई ई० पू० के करीब आये, और तब से उसका नाम तुऋग्यार-देरा या तुग्यारिस्तान पड़ा । कम्बोज और तुऋग्यार तब एक दूसरे के पयाँच हो गये, और नये नाम ने पुराने को दबा दिया । बोगोर, पामीर, बरदशा, ममी किमी सबय तुऋग्यार-देरा में सम्मिलित थे । बाद जब 'मुहमी' का वह साम्राज्य टूट गया, तब केवल बरदशा का नाम तुऋग्यार रह गया । इस प्रकार कम्बोज और तुऋग्यार दोनों नाम प्राचीन कम्बोज परे तुऋग्यार के दो टुकड़ों के नाम रह गये ।

चिन्तु कम्बोज राज् का टीक अर्ध बहुत खमाने यह भूख न गया था, मी इस प्रसिद्ध कारमी वन में प्रचुर होता है—

। अगर ऊपर-पर निजान्त पलाइ से आँकस हमस हम सीरी
वर्क आहर्ग, वीरम कम्बोज वीरम बरदशा कारमीरी

। हमस कम्बोज-देरा का नाम — १० ई० पू० १० ई० पू० १० ई० पू०

१० ई० पू० १० ई० पू० १० ई० पू० १० ई० पू० १० ई० पू० १० ई० पू०

से बनाये गये हैं। अतिशय, वे बम्बोड़ की भाँति बने।
वे पश्चिमी भाग काकर बगुल कायेरी (तिरुमोरी) हैं।

४०० गजदीपुल काये बगुलभाय के अर्धक का था। वे
अर्ध हैं। वे बम्बोड़ देश का राजा राजकीर्ति हो कर जाया था, जो
का बगुल राजपुत्र से राजपुत्र का अतिशय है। राजा की राज
धानी का नाम भी राजपुत्र था, सो इन राजा बम्बोड़ के बम्बोड़
विशाल से जानते हैं। नेपासी बगुलभाय बम्बोड़ की विपत्ति के
बारे बम्बोड़ी है, जो भी कह रहा हो गया, बम्बोड़ नेपास के
राज से देखने काये दो बार विपत्ति का बगुल ही दीपक है।

(२) बम्बोड़ के पदोम में गंगा

बम्बोड़ देश के भूगोल का अध्ययन करते हुए मुझे यह
सूझ पड़ा कि बम्बोड़ में बम्बोड़ देश का गंगा का बम्बोड़
विपत्ति है। बम्बोड़ की पुरबी सीमा सिंधु (पारबन्ध) नहीं
है। यह विपत्ति काये के अर्धन भाग की विपत्ति के अनुसार
सिंधु और गंगा का क्षेत्र एक ही अनुसार सरोवर था। सीमा
उमड़े उत्तर और गंगा पूर्व निहाली थी। इस प्रकार उम
सरोवर से उत्तर से पूर्व विपत्ति करने में यह की सीमा बम्बोड़
के ठीक था गंगा के सिंधु पर पहुँच सकती थी। पारबन्ध का
अध्ययन करने के उत्तर की विपत्ति (अर्धन नाम बम्बोड़)
उत्तर-गंगा (व्यय की शक्ति सिंधु) का उत्तर-गंगा की एक
शक्ति के सिंधु गंगा-सरोवर में नहीं हो सकती, पदोम के सब

१. इस पद के सिंधु में बम्बोड़ के पद राजपुत्र और पद २०
२२० टी. का अनुसार है।

२. बम्बोड़ : पद १००।

३. अनुसार : पद ३।

४. अध्ययन काये : पद ३.५ अनुसार पद १०० १००-१२५।

मृगोत्तवेद्या निरचय से न जानते थे कि विष्णु की बाह्यो मङ्ग-
पुत्र की उतरती घाट है या इरावती या सात्वती की ।

(३) किरात

कम्बोज और उनके पड़ोस की गंगा के पहचाने जाने पर-
मैने रघुवंश के अतुमार रघु के उत्तर-दिग्विजय के बाकी राने को
ढोने का जतन किया । उस राने में गंगा के बाद किरातों का
बल्लेख है^१ । कम्बोज से रघु का रत्ना कारकोरम जोड़ तक था,
उसके आगे के किरात निरचय से लद्दाख या मरमुत के निब्बती
से; दोनो में कालिदास के समय तक निब्बती न थे । पुराणों
में स्पष्ट लिखा है कि भारत के पूरबी छोर के स्लेच्छ किरात थे^२ ।
यहां कालिदास ने निब्बदियों के लिए वही शब्द चना है, जिससे
स्पष्ट है कि किरात शब्द ठीक आधुनिक निब्बतवर्मी के अर्थ में
चला था ।

(४) उत्तर-मङ्गल और किन्नर

किरातों का देश लॉपने के बाद रघु की 'पर्वतीय गलों में
घोर लड़ाई हुई' जहां 'बल्लवसङ्केतो को विरतोत्सव कर के उसने
किन्नरों से अपने विजय के गीत गवाये' । उसके बाद वह
कैलाश पर्वत गये बिना हिमालय से उतर आया^३ । अन्तिम
पाठ में सूचित होता है कि किन्नरों का देश हिमालय की गर्म-
मृन्दता में और कैलाश के पश्चिम था । वह लद्दाख के परती
तरफ भी नहीं हो सकता । महामारन में अर्जुन के उत्तर-
दिग्विजय में भी किन्पुण्य के देश के बाद गुहको का हाटक

^१ रघुवंश ४, ३६

^२ वसु ५० १ ४२, ८० विष्णु ५० २, ३ ८, ६० उत्तर १४१

^३ रघुवंश, ४, ३३—८०

और पूर्वी भारत का सम्बन्ध पुराणों में भी परिचित है^१। इससे यह प्रकट है कि आधुनिक भाषा-पड़ताल ने कनौरी, यास्या आदि बोलियों की आग्नेय भाषाओं से जो सगोत्रता खोज निकाली है, उसे प्राचीन भारतवासी भी पहचानते थे। उस पहचान का एक और प्रमाण भी मुझे मिला है। टालमी के भूगोल में मत्त-यान की ग्याड़ी से मलक्का की समुद्रसन्धि^२ तक के समुद्र को 'सिनस् महरिक्स्' कहा है। उस समुद्र के तट पर सुवर्णभूमि के मोन या तलंग लोग रहते थे, उसके ठीक सामने भारत के पूरबी तट पर तेलंगण और शबरी नदी है। इस प्रकार पूर्वी भारत के आग्नेयदेशी शब्दों और सुवर्णभूमि के आग्नेयदेशी मोनों, दोनों के लिए शबर शब्द का प्रयोग किया गया दीखत है, जिससे न केवल यह प्रकट होता है कि इनकी सगोत्रता सात थी, प्रत्युत ऐसा भी जान पड़ता है कि शबर शब्द आग्नेयदेशी स्वन्ध की दोनों शाखाओं—मुण्ट और मोन-ख्नेर—के लिए, या दोनों के विशेष अंशों के लिए सामान्य रूप से दर्शा जाता था।

विषर = बनौर शिनाख्त की घेरी-अपदान की निम्नलिखित गाथाओं में भी, जिन में घेरी नामा के एक पहले कितरी-जन्म की कहानी है, उद्घि मिलती है—

पन्दभाना-नदी-तीरे अहोमि विषरी तदा।

अथऽरसं देवदेवं अहमन्तं नरामभम् ॥ इत्यादि^३।

१. प्र० ४०, पृ० २६७।

२. समुद्र-सन्धि = जलमंडल, -synthesis। यह सुन्दर शब्द आधुनिक लिपि की दृष्टि से सही दिखता है, और मुझे हिन्दी 'अलमंडल' से बड़ी कल्पा लगती है।

३. घेरी-नामा पर अमरनाथ की कथाका परम्परादोशरी में उद्धृत, एहि ईश्वर कोत्तायें संवरत, पृ० ४२-४३।

चन्द्रमागा का छोन कनौर के पच्छिमी किनारे पड़ता है।

‘उत्सव-सङ्केतो’ का नाम किन्नरो’ के भाष आया है, तथा किन्नरो’ और किन्नरो’ के नाम के बीच। हमसे मैं यह परिणाम निकालता हूँ कि ये लक्ष्य और कनौर के बीच की कनौरी-बाँ की छोटी छोटी बोलियाँ—मनचाटी, आहुली, पुनाज, रंगलोई, कनारी—बोलने वालों के पूर्वज थे। पार्सीटर ने रपुंरा को एक टीका से उम शब्द की जो व्याख्या उद्धृत की है। उस से प्रकट होता है कि ‘उत्सव-सङ्केत’ उनका नाम न था, प्रत्युत एक समाजशास्त्रीय परिभाषा थी, जो उन जातियों के लिए प्रयुक्त होती थी जिनमें विवाह-बन्धन स्थापित न हो, और खुली प्रमि-भणा (promiscuity) या अनावरण^१ जारी हो—सङ्केत करने से कोई स्त्री या पुरुष ‘उत्सव’ के लिए आ सकता हो। विवाह-बन्धन की शिथिलता उक्त जातियों में आज तक है जिस बात से मेरी सिनाख्त को और भी पुष्टि मिलती है।

(५) कालिदास के अनुसार भारतवर्ष की सीमायें, और उसका भारत की राष्ट्रीय एकता-विषयक आदर्श

रघु के उत्तर-दिग्विजय का मार्ग इस प्रकार टटोल चुकने पर मुझे यह दीख पड़ा कि कालिदास ने भारत की उत्तरी और पच्छिमी सीमायें रघु के दिग्विजय के बहाने इतनी बारीक बतलाई हैं, जो मैंने आधुनिक भूगोलशास्त्र, जनविज्ञान और भाषाविज्ञान के आधार पर निरिक्त की हैं! यह ध्यान देने की

१. मार्कण्डेय पुराण का अनुवाक, पृ० ३१९।

२. अनावरण शब्द हमारे पुराने वाक्य में प्रमिभणा के अर्थ में आता है, जैसे—अनाकृताः किञ्च पुरा स्त्रिय नामन् वरानने (महाभारत १, १२८, ४)।

यात है कि रघु के समूचे दिग्विजय में संक्षेप की खातिर केवल सीमान्त देशों के नाम आये हैं, किन्तु उनसे भारत की पूरी परिक्रमा हो गई है। इस पुस्तक में कही गई भारत की सीमाओं और कालिदास की सीमाओं में केवल इतना अन्तर है कि कालिदास ने सिंहल को भारत में शामिल नहीं किया। अन्यथा रघु के दिग्विजय के वर्णन से यह स्पष्ट है कि उस क्रान्तदर्शी महाकवि की प्रतिभा ने भारत की भौगोलिक और जातीय एकता का अनुभव किया है, और उसे एक आदर्श के रूप में चित्रित किया है। यह माना जाता है कि वह गुप्त सम्राटों के आदर्श से अनुप्राणित था। क्या उल्टी बात नहीं हो सकती कि गुप्त विजेताओं को उसके आदर्शवाद ने अनुप्राणित किया हो ? और उसकी प्रतिभा ने विक्रमादित्यों के कर्तृत्व को जगाया हो ?

(६) मौर्य-साम्राज्य की उत्तरी सीमा और अशोक का स्वातन पर अधिकार

मौर्य-साम्राज्य की उत्तरी सीमा अब तक हेरात से पन्डे-बाघा और हिन्दूकुश के साथ साथ मानी जाती है, और हिमालय के अन्दर कहाँ तक थी इस विषय में कुछ स्पष्ट नहीं कहा जाता। अब कम्बोज की शिनाग्वन में वह हिमालय और हिन्दूकुश के पार रंगकुल भील तक पहुँच गई। कम्बोज मौर्यों के 'विजित' में था।

स्वातन और भारत की अनुभूति घटलाता है कि स्वातन अशोक के अधीन था, और उन्हीं के समय वहाँ पहला भारतीय उपनिवेश बसा। इस धान की मचाई पर अब तक बहुत सन्देह किया जाता रहा है, पर अब वह सच निकल आय तो कुछ भी अचरज न होगा, कारण, कम्बोज की पूर्वी सीमा से स्वातन तक घोंड़े की पीठ पर चार-पाच रोज में पहुँचा जा सकता है।

पन्द्रभागा का सोन कनौर के पच्छिमी किनारे पड़ता है।

‘उत्सव-संकेतो’ का नाम किसानों के साथ आया है, व किसानों और किसानों के नाम के बीच। इससे मैं यह परिण निकालता हूँ कि ये लक्ष्म्य और कनौर के बीच की कनौरी की छोटी छोटी बोनियाँ—मनवाडी, लाटुली, पुनान, रंगसे कनारी—बोनियाँ बागों के पूर्वज थे। पार्सीटर ने रघुवंश एक टीका में उस शब्द की ओर व्याख्या उद्धृत की है। उस प्रकट होना है कि ‘उत्सव-संकेत’ उनका नाम न था, प्रत्युत समाजशास्त्रीय परिभाषा थी, जो उन जानियों के लिए प्रयु होती थी जिनमें विवाह-बन्धन स्थापित न हो, और सुली प्रभण (promiscuity) या अनावरण जारी हो—ग करने में कोई शर्ती या पुद्ग ‘उत्सव’ के लिए आ सकना है विवाह-बन्धन की शिक्षितता उन्हें जानियों में आत तक जिस बात में मेरी शिनायत को और भी पुष्टि मिलती है।

(५) कालिदास के अनुसार भागवतर्ष की मीमांसा और उसका भागन की राष्ट्रीय एकता-विषयक आदश

रघु के उत्तर-दिग्बिजय का मार्ग इस प्रकार उद्घात पु वर मुझे यह दीज पड़ा कि कालिदास ने भागन की रंग और पच्छिमी मीमांसे रघु के दिग्बिजय के बहाने दृष्ट व बनवाई है, जो मैंने आधुनिक भूगोपशास्त्र, जनविज्ञान व पणर्विज्ञान के आधार पर ‘नाश्वन की है’ यह ध्यान देने

१. भागवतर्ष भागन का अनुवाद १०११

२. भागवतर्ष का अनुवाद १०११ का भाग २ में भागन के भाग

भागन है। भाग - भागवतर्ष का अनुवाद १०११ का भाग २ में भागन के भाग

बात है कि रघु के समूचे दिग्विजय में संक्षेप की खातिर केवल सीमान्त देशों के नाम आये हैं, किन्तु उनसे भारत की पूरी परिक्रमा हो गई है। इस पुस्तक में कही गई भारत की सीमाओं और कालिदास की सीमाओं में केवल इतना अन्तर है कि कालिदास ने सिंहल को भारत में शामिल नहीं किया। अन्यथा रघु के दिग्विजय के वर्णन से यह स्पष्ट है कि उस कान्तदर्शी महाकवि की प्रतिभा ने भारत की भौगोलिक और जातीय एकता का अनुभव किया है, और उसे एक आदर्श के रूप में चित्रित किया है। यह माना जाता है कि वह गुप्त सम्राटों के आदर्श से अनुप्राणित था। क्या उलटी बात नहीं हो सकती कि गुप्त विजेताओं को उसके आदर्शवाद ने अनुप्राणित किया हो ? और उसकी प्रतिभा ने विक्रमादित्यों के कर्तृत्व को जगाया हो ?

(६) मौर्य-साम्राज्य की उत्तरी सीमा और अशोक का खोजन पर अधिकार

मौर्य-साम्राज्य की उत्तरी सीमा अब तक हेरात से बन्दे-बाघा और हिन्दूकुश के साथ साथ मानी जाती है, और हिमालय के अन्दर कहाँ तक थी, इस विषय में कुछ स्पष्ट नहीं कहा जाता। अब कम्बोज की शिनाख्त से यह हिमालय और हिन्दूकुश के पार रंगकुल मील तक पहुँच गई ! कम्बोज मौर्यों के 'विजित' में था।

खोजन और भारत की अनुभूति बतलाती है कि खोजन अशोक के अधीन था, और उसी के समय वहाँ पहला भारतीय उपनिवेश बसा। इस बात की सच्चाई पर अब तक बहुत सन्देह किया जाता रहा है, पर अब यह सच निकल आय तो कुछ भी अचरज न होगा, कारण, कम्बोज की पूर्वी सीमा से खोजन तक घोड़े की पीठ पर चार-पाँच रोज में पहुँचा जा सकता है।

वहीं कहा जा सकता। कुलिन्द और प्राञ्ज्योतिष के बीच केवल तीन देश प्रतीत होते हैं—पहला सात्वपुर जिसका राजा सात्वराज युमत्सेन था, फिर कट-देश जिसपर सुनाभ राज्य करता था, और तीसरे शाकलद्वीप जिस में सात द्वीप या दोभाज शामिल थे और अनेक राजा राज करते थे। शाकल-द्वीप इस प्रकार एक लम्बा प्रदेश था। नेपाल का नाम न होना एक उल्लेख-योग्य बात है। अभी हम देखेंगे कि यह समूचा सन्दर्भ १७६ ई० पू० के बाद का नहीं हो सकता। इस प्रकार दूसरी शताब्दी ई० पू० के शुरू में प्राञ्ज्योतिष का राज्य स्थापित हो चुका था, पर 'नेपाल' नाम प्रचलित न हुआ था।

(३) जन्नागिरि, बहिर्गिरि, उपगिरि; 'उत्तूक', तांहित,
तुन्द और चोल

दूसरी यात्रा जो दूसरे अध्याय में है, कुलिन्द से उत्तरपश्चिम की है, क्योंकि उसमें फरमीर, कम्बोज आदि के नाम हैं। शुरू में ही कहा है कि अर्जुन ने अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि और उपगिरि को जीता (३)^१। मेरे विचार में ये जातिवाची शब्द हैं जिनका अर्थ है—गर्म-शृंखला, मध्य शृंखला और बाह्य शृंखला। आगे विवरण है। पहले उसने भारी युद्ध के बाद 'उत्तूक'-वासी बृहन्त को जीता (५-६)। फिर सेनापिन्दु के राज्य को आसानी से अधीन कर (१०) तथा मोदापुर और 'सुदाना सुसंकुल' को ले कर वह उत्तर 'उत्तूक' देश को पहुँचा (११), और वहाँ छावनी डाल कर अपने आदमियों को 'पञ्च गलों' को जीतने भेजा (१२)। फिर सेनापिन्दु की राजधानी देवप्रस्थ को सौट कर वहाँ छावनी डाली (१३),—स्पष्ट है कि वह स्थान उत्तर और दक्षिण 'उत्तूक' के बीच कहीं

१. कोलों = शोलों की संख्याएँ हैं।

पर था। वहाँ से राजा पौरव के किले पर चढ़ाई की (१४), और वीर पहाड़ियों को हरा कर उसे जीता (१५)। तब सात 'दस्यु' उन्मत्तसङ्केत गणों को काबू किया (१६), और करमीर तथा लोहित के दस मयइलों के विजय के लिए प्रस्थान किया (१७)।

उन नामों में से कत्सव-सङ्केत हमारे पूर्व-परिचित है, और बाकी सब भी करमीर के पूरव होने चाहियें। मेरे विचार में 'उत्तक' 'कुल्ल' (कुल्ल) का अपठ है। यदि ऐसा हो तो पौरव का राज्य सम्भवतः चम्पा में रहा होगा। मुद्रामा पर्वत का नाम रामायण २, ६८, १८ में, अयोध्या से केकय जाने वाले सम्येष्ट-हरो की यात्रा में, भी आना है। उसमें प्रतीत होता है कि वह व्यास नदी के नजदीक कहीं था। हमारे हिसाब से भी वमें बड़ी होना चाहिये। 'मुसंडुलम्' का मूल रूप कहीं 'मुसंडलम्' तो नहीं है। सकट माने जोन या पाटा।

करमीर और लोहित के रामे में त्रिगर्सा (कांगड़ा), शर्ष (हुगर) और कोऊनद ने स्वयं अर्जुन की अधीनता मान ली (१८), पर अभिमारी (द्विमान) और 'उरगा' (उरशा या हजारा) मुक्तावले के बिना अधीन न हुए (१९), और मिहपुर (नमक-पहाड़ों के प्रदेश की गजधानी) को भारी युद्ध के बाद हाथ आया (२०)। इन नामों में से कोऊनद के सिवाय सब परिचित हैं।

लोहित मेरे विचार में रोह या चक्रगान्धिवान है, क्योंकि भागे वाहरीच या चक्रग का उल्लेख है (२२), और चक्रग का राजा रोह में से ही हो सकता था।

१. वसुमन्वेन वाहरीचान् (वाहरीचान् ?) मुद्रामा पर्वत पर्वतम्।
 २. विष्णोः कर्षं मेघमाता विष्णोः भावि वसुमन्वीम्।
 ३. विष्णुद वह पहाड़ या जिस पर महरीच की बाकी राजा चक्र की छोटे की कट बहने गाड़ी गई थी।

[illegible]

(1) संविदां न सुखं.

[illegible][illegible][illegible]



राज्यसमीप लक्ष परलो प्राप्तनारीविषयः । यदि बाह्य लीला
ना, ना प्राप्तनारी विषय करी हो सकता है ।

(१०) शुक्तिमान् पर्वत

शुक्तिमान् पर्वत विषयक विवाद बहुत पुराना है । कर्पि-
दास और बगानर ने उसे शुक्तिमती नदी का अन्वेषण मान कर
कमरा श्रुतिमान् पर्वत की पर्वतशृङ्खला तथा इसी
बाग के पर्वत के पर्वत माना था^१ । पात्रीटर ने सिद्ध किया कि
शुक्तिमती नदी नदी का नाम है, परन्तु बगानर शुक्तिमान् पर्वत
का कोई सम्बन्ध नहीं है । मार्चण्डेय पुराण में शुक्तिमती का
ग्राम 'पर्वत' पर्वत का कहा है, और सभी पुराणों में शुक्तिमती
का उल्लेख नदी नदी की या परिगणना है जमें शुक्तिमती
का नाम नदी है । पात्रीटर को अभिमत सम्मति पर भी कि
शुक्तिमान् का अर्थ गांगी और व्यासी-प्रवन्धित पर्वत करना चाहिए,
क्योंकि महाभारत में नाम के पूर्व विभिन्नत्व में शुक्तिमान् का
नाम है और पूर्व में और कोई उल्लेखयोग्य पर्वत है नहीं^२ ।

इसके बाद बाग समराज्य मज्जुपट्ट में शुक्तिमान् की
शुक्तिमान् पर्वत का उल्लेख की है । शुक्तिमान् से निश्चये
पात्री नदी का नाम पुराणा में इस प्रकार दिये हैं—

शुक्तिमान् मुकुमती च मण्डला मण्डवादिनी ।

दुर्गा पञ्चाशत्या चैव शुक्तिमन्त्रमवाः श्रुताः ॥ (१३)

१. कर्पिदासीप्रकृत सर्वे विज्ञाने १०, १०० १३, १५, १६, १७

१९३ १९५ ।

२. मार्चण्डेय पुराण मज्जुपट्ट १०० १८५, १८६, १८७ ।

३. दुर्गा पञ्चाशत्या काव्यरत्नमाला १०० (१००-१०५)

४. कर्पिदासीप्रकृत १०० १८५ १८६, १८७ ।

अपिकुल्या कुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी ।

कृपा पलाशिनी..... (मार्कण्डेय)

मत्स्य में 'अपिका' और 'पलाशिनी' के बाजाय 'काशिका' और 'पारिणी' पाठ है । छा० नजूमदार का कहना है कि कृपा = कुभा (काबुल नदी), कुमारी = कुनार, मन्दगा या मन्दवाहिनी = हेलमन्द, पारिणी = पंजशीर, अपिकुल्या = इसिकला = यूनानियों की एबु-अस्पला जो कि सिन्ध के पच्छिम की हिन्दूकूश से निकलने वाली कोई धारा थी । साथ ही उनका कहना है कि शुक्तिमान् नाम हिन्दूकूश से दक्खिन तरफ भारत के पच्छिमी सीमान्त की समूची पर्वतशृंखला का है जिसमें केवल एक अंश में अब वह सुलेमान रूप में पाया जाता है ।

भीम के पूर्व-दिग्विजय में शुक्तिमान् का नाम, उनका कहना है कि, गलती से आ गया है, जैसे अर्जुन के उत्तर-दिग्विजय में सुन्ध, चोल और प्राग्योतिष का नाम गलती से है, या नकुल के पश्चिम-दिग्विजय में उत्सव-संकेतों का गलती से । प्राग्योतिष को उत्तर में गिनने में क्या गलती है, सो मुझे समझ नहीं आया । सुन्ध और चोल का उत्तर में परिगणन गलत है सो बात हमारी पहली अज्ञान की दशा में कही जा सकती थी, रघु-दिग्विजय वाला लेख भेजते समय तक मैंने उसे अज्ञानवश गलत कहा था, किन्तु बाद जब मुझे उत्तरी सुन्ध और चोल का पता सूझा तब मैंने एक परिशिष्ट भेज कर उसे ठीक किया । उत्सव-संकेतों का नाम पच्छिम में होने में कुछ भी गलती नहीं है, क्योंकि उत्सव-संकेत केवल एक मनाजशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द है, उस किस्म की कोई जाति पच्छिम में भी रही हो सो सम्भव है । यह बात पार्सीटर पहले ही दिखला चुके हैं । तो भी भीम के पूर्व-दिग्विजय में शुक्तिमान् का नाम क्यों और कैसे है, उसकी व्याख्या

और सुलेमान में भेद नहीं कर सकते, इससे केवल यही सूचित होता है कि भौगोलिक विषयों को हमारे देश में अभी तक बहुत हलकेपन से दिययाया जाता है ।

मैं शुक्तिमान् पर्वत की कोई शिनाख्त अभी तक निश्चयपूर्वक नहीं कर सकता, किन्तु उस सम्बन्ध में एक दो बातों की तरफ मुझे ध्यान दिलाना है । एक तो यह कि महेन्द्र आदि 'कुल-पर्वत' हैं, और कुल-पर्वत तथा मर्यादा-पर्वत (सीमान्त के पर्वत) ये दो शायद प्राचीन भारतीय भूगोल की भिन्न भिन्न परिभाषायें हैं । दूसरे

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋतुपर्वतः

विन्ध्यश्च परियात्रश्च सप्तैवे कुलपर्वताः,

इस परिगणन में एक क्रम है । महेन्द्र दक्खिन भारत के उत्तर-पूर्वी छोर पर है, वहां से हम पूरव तट के साथ दक्खिन चलेते हैं, नालमलइ मे एलामलइ-आनमलइ तक सय पर्वत मेरे विचार में इस परिगणन के मलय में सम्मिलित हैं । फिर पच्छिमी तट के साथ उत्तर घूम कर हम सह्य का साथ पकड़ते हैं । ऋतु पर्वत सह्याद्रि के उत्तरी छोर से पच्छिम से पूरव भारत के आरपार चला गया है । फिर उनके पूरवी छोर से उत्तर घूम कर विन्ध्य और उस के आगे पारियात्र है । स्पष्ट है कि शुक्तिमान् सह्य और ऋतु के बीच कहीं हाना चाहिए । या तो वह सह्य के उत्तरी छोर या ऋतु के पच्छिमी छोर पर हो, किन्तु वहां गुंजाइश नहीं के बराबर है । इमनिद मेरा कहना है कि शुक्तिमान् हैदराबाद-गोनकुंढा वाले पठार का नाम है, जो पूरवी घाट (महेन्द्र, मलय) और पच्छिमी घाट (सह्य) के बीच आर दोनों में अलग है । उस पठार की नदियां में से मय में प्रसिद्ध मूना है । मुझे ऐसा लगता है कि 'ऋपट्टा' वाल्मिक में मूषिका का अपभ्रंश है । पेटवगु दिन्दी, कागना और मुल्लानारी में है

कोई एक गुह्यगारी हो सकती है; भुज्यामारी कागजा की शाखा ही है। मन्दगा तब शाब्द मानेर हो, मन्दवादिनी मुनेद, और पलाशिनी या वाशिनी पाश्वेर या पक्षेद। इस प्रकार नदियों का परिगणन भी एकक्रम से होगा। कृषा या कृषा का अन्दाज मैं नहीं कर सका।

मैंरी यह रिनाएन अभी तक आरखी है, क्योंकि शुक्तिमान् पर्वत विपयक कृत निर्देशों का तुलनात्मक अध्ययन अभी तक मैंने नहीं किया।

भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा, राष्ट्रलिपि, राष्ट्रीय वर्णमाला और परिभाषायें; तथा कुछ प्रान्तों की भाषा-लिपि-समस्या



(१) हमारे देश के भाषाविषयक ऐक्य-अनैक्य का प्रश्न

जिन लोगों के मन में भारतवर्ष के अनैक्य का विचार घर कर गया है वे उसकी भाषाओं की बहुतायत की प्रायः दोहाई देते हैं; दूसरी तरफ़ बड़े जतन से सिद्ध किया जाता है कि उसकी एक राष्ट्रभाषा है, और उसके कई पक्षपाती यहां तक सपना लेते हैं कि किसी दिन सब प्रान्तिक भाषाओं का वही स्थान ले लेगी। इस प्रश्न का एक तरफ़ जहाँ भारतवर्ष के इतिहास की व्याख्या से सम्यग्ग्रह है, वहां दूसरी तरफ़ बड़ा व्यावहारिक महत्त्व भी है, जिससे इस वाद-विवाद में प्रायः गर्मी आ जाती है। अनैक्यवादियों का कहना है कि भारतवर्ष की सैकड़ों भाषायें हैं, और उसकी पुष्टि में वे भाषाविज्ञानियों का मत उद्धृत करते हैं; दूसरी तरफ़ ऐसा कहने वाले भी हैं कि समूचे उत्तर भारत, विन्ध्य-मेखला महाराष्ट्र और उड़ीसा की एक ही भाषा है, और बाकी सब उसकी योलियां मात्र हैं। भाषाविज्ञानियों की पड़ताल के परिणामों को ठीक ठीक समझने का दोनों तरफ़ से जतन नहीं होता, और इसलिए व्यर्थ में विवाद बढ़ता है।

भारतवर्ष की वर्तमान भाषाओं का पूरी वैज्ञानिक पड़ताल सर ज्योर्ज ग्रियर्सन ने पिछले चालीस बरस लगातार की है, उन

जैसा प्रामाणिक विद्वान् इस विषय का इस समय शायद दूसरा कोई नहीं है। उनके हिसाब से भारतवर्ष में कुल १७९ भाषायें और २४४ बोलियाँ हैं। सन् १६२१ की गणना में बर्मा-सहित भारत की कुल १८८ भाषायें और ४६ बोलियाँ गिनी गईं थीं। इन संख्याओं को देख कर पहला प्रश्न यही सामने आता है कि भाषा और बोली का लक्षण क्या है? दोनों में क्या भेद है? यों तो हर बीस कोस पर बोली बदल जाती है, नहीं नहीं, हर आदमी की बोली उसके पड़ोसी से कुछ बदलती है, पर बोली का पूरा बदलना किसे कहते हैं? और भाषा की भिन्नता की क्या पहचान है?

भारतीय भाषा-पद्धत में इस विषय की शिथिलता डा० ग्रियर्सन ने इस प्रकार की है—‘सैचुरी’ कोष में भाषा और बोली का भेद यों किया गया है कि एक भाषा को अनेक बोलियाँ वे हैं जिनमें परस्परानवबोधता हो, जिनमें से एक के बोलने वाले दूसरी को आप से आप समझ लें, किन्तु जहाँ एक बोली के बोलने वाले जतन कर के सीखे बिना दूसरी को न समझ सकें वहाँ उन दोनों को भिन्न भिन्न भाषायें कहना चाहिये। किन्तु उत्तर भारत की आर्य भाषाओं पर ये लक्षण ठीक नहीं पड़ते, वहाँ परस्परानवबोधता भाषा-भेद की सदा कसौटी नहीं होती, क्योंकि बंगाल से पंजाब तक प्रत्येक नाम को शिथिल व्यक्ति भी दुमा-पिया है, और हिन्दो या हिन्दुस्तानी समझ सकता है। दूसरे उस समूचे देश में तथा राजपूताना, मध्य भारत और गुजरात में भी जनता का समूचा शब्दकोष जिसमें साधारण वर्तव के लगभग सब शब्द हैं उच्चारण-भेदों को छोड़ कर एक ही है; इसलिए यह कहा और समझा जाता है कि बंगाल और पंजाब के बीच एक ही भाषा हिन्दी है, जिसकी बहुत सी स्थानांतर्य बोलियाँ हैं। एक दृष्टि से यह ठीक है। किन्तु निहालशास्त्र की दृष्टि से

साधकीन करने पर हिन्दों की हल लड़ाई में बंदिगों में
 रखे रहने का नर साध साध है । आध्यात्मिकता को हल
 एक आध्यात्मिकता को साधना साधना है । हिन्दों, धर्म
 को साधना हिन्दों हल लड़ाई में बंदिगों में बंदिगों में । हल
 को पर साधना की साध है । साधना के लिए, साधना, साधना, साधना
 साधना के साधना साधना साधना है । साधना, साधना, साधना
 है कि साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 हिन्दों साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।

हम साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।

हम साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।
 साधना साधना साधना साधना साधना साधना है ।

व्यावहारिक अन्तर हो—जैसे बंगला और आसमिया का—
 वहाँ भी वे भाषा की भिन्नता मान लेते हैं। मैंने व्यावहारिक
 भेद, अर्थात् जातीयता के भेद, को ही मुख्य कमौटी माना है।
 यही कारण है कि जातीय भूमियों या स्वाभाविक प्रान्तों का
 बँटवारा करते समय मैंने अवध को मैदान के पहाड़ी हिन्दी-
 प्रदेश के साथ मिला देने और युन्देलखण्ड-बघेलखण्ड को
 परम्पर मिला देने में संकोच नहीं किया। समूचे भारत की एकता
 एक संपारमक एकता है। उसके स्वाभाविक प्रान्त एक एक
 स्वतन्त्र जीवित अंग हैं और उनमें से कुछ को छोड़ कर बाकी
 की जो स्वतन्त्र भाषायें हैं उनका पूरा विकास होना चाहिए।

क्योंकि भारतीय भाषा-पड़ताल की संख्याओं का वास्तविक
 विवादा में दुरुपयोग किया जाता है, इसलिए प्रसंगवश यह स्पष्ट
 कर दें कि डा० मियर्सन की १७९ भाषाओं में से ११३ किराठ
 (तिब्बतवर्मी) परिवार की हैं। हम देख चुके हैं कि किराठ और
 आग्नेय-भाषियों की कुल मिला कर संख्या भारतीय जनता में
 सैकड़ों पीछे केवल तीन है। इसलिए जहाँ १७ आर्यावर्सी
 भाषाओं के बोलने वाले २२ करोड़ ६० लाख हैं वहाँ किराठ
 भाषाओं में से प्रत्येक के औसतन बोलने वाले १७ हजार हैं।
 उनमें से भी नागा पहाड़ों में कुल २९ नागा भाषायें हैं जिनमें से
 प्रत्येक के औसत बोलने वाले ११२ हजार हैं। सब मिला कर
 नागा-भाषियों की आबादी दिल्ली शहर की तीन चौथाई है।

हिन्दी को लोग पिछले कुछ समय में भारतवर्ष की 'राष्ट्र-
 भाषा' के रूप में पहचानने लगे हैं। वह भारतवर्ष के सब से
 मुख्य और केंद्रित कम से कम चार प्रान्तों (अन्तर्बेद, बिहार
 चोदकाशल गजस्थान) का व्यावहारिक प्रान्तीय भाषा है।
 अन्य कई प्रान्तों में भी वह मृगमया से समझी जाती है। 'राष्ट्र'

भाषा' का अनुवाद अंग्रेजी में 'लिंगुआ फ्रांका' किया जाता है। उसके सम्बन्ध में डा० प्रियर्सन कहते हैं—'ठीक ठीक कहें तो लिंगुआ फ्रांका एक दोगली बोली होती है जो कि एक नाना-जातीय भाषा के तौर पर बर्ती जाती है। किन्तु हिन्दुस्तानी यद्यपि एक नानाजातीय भाषा के रूप में बर्ती जाती है, तो भी वह दोगली नहीं है। मुझे कोई दूसरा सुगम अंग्रेजी शब्द मालूम नहीं है जो कि अभीष्ट अभिप्राय (उसकी स्थिति) को लगभग ठीक दिखला सके।' (वहाँ, पृ० १६४ टि० २)

मैंने जो हिन्दी-भाषियों की कुल संख्या १३ करोड़ कूती है वह मुख्यतः बिहारी, पूरबी हिन्दी, पछोही हिन्दी, राजस्थानी, मीली और मध्य तथा पच्छिमी पहाड़ी की संख्याएँ जोड़ने से बनती है। सन् १९२१ की गणना में इनमें से बहुत सी भाषाओं की संख्याएँ असल से कम हैं, और पछोही हिन्दी की असल से अधिक, क्योंकि भिन्न भिन्न प्रान्तों में बहुत लोगों की बोली खाली 'हिन्दी' लिखी गई है जिससे पछोही हिन्दी समझी गई है। किन्तु इस प्रकार की गलती का होना ही सिद्ध करता है कि इन सब प्रान्तों की व्यावहारिक भाषा एक है, और साधारण जनता व्याकरण-शास्त्रियों के चारोंक भेदों को नहीं समझती। उक्त भाषा-भाषियों की कुल संख्या ११, ४२ ६५ १७५ आती है। उनके अतिरिक्त पंजाब की भाषा के विषय में विवाद है। कोई पंजाबी को हिन्दी की बाली-भाषा मानते हैं, कोई स्वतन्त्र भाषा। इस कारण मैंने उक्त संख्या में पूरबी पंजाब की पंजाबी बोलों के अंक मिला दिये हैं और पच्छिमी पंजाब की हिन्दी के नहीं मिलाये हैं, पंजाबी के वे अंक भी कुछ गनन तथा अधिक हैं, क्योंकि बहुत से हिन्दी बोलने वाले उनमें गिने गये हैं। पंजाबी की संख्या मिला देने में हिन्दी-भाषियों की कुल संख्या १३, ०५, २८ ७५ बनती है। ध्यान रहे कि डा० प्रियर्सन के मत में इसके अतिरिक्त गुजराती-

भाषियाँ का शब्दकोष भी उच्चारण-भेदों के सिवाय हिन्दी का ही है। हिन्दी और सिन्धी के विषय में भी वही बात कही जा सकती है। मर अल्फ्रेड पेरी ने १८५३ ई० में जब पहले पहल विद्यमान भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण किया था^१ तब उन्होंने उन दोनों को भी हिन्दी की बोलियाँ ही गिना था।

इतनी बड़ी संख्या या इससे अधिक संख्या संसार में शायद कोई एक और किसी भाषा बोलने वालों की होगी। उनमें से एक अंग्रेजी है, जो एक शक्तिशाली साम्राज्य की भाषा है; और उसके बोलने वालों की संख्या भी पिछले दो सौ बरस में ही इतनी बढ़ी है। दूसरी तरफ़ बिना किसी राजकीय महार के एक दलित दरिद्र दास जाति की भाषा होते हुए भी हिन्दी के बोलने वाले १३ करोड़ हैं, क्या यह भारतीय जाति की गहरी प्रभुत्व आन्तरिक एकता का उज्ज्वल प्रमाण नहीं हैं? और क्या यह हमारे पुण्यों की शताब्दियों तक भारतवर्ष को एक राष्ट्र बनाने की चेतन चेष्टाओं का फल नहीं है? आधुनिक हिन्दीभाषियों ने अपनी भाषा या संस्कृति को व्यापक बनाने की कोई वैसी चेष्टा नहीं की; उसकी आज की व्यापकता केवल इस कारण है कि वह उन भाषाओं की वंशज है जिनके बोलने वाले शताब्दियों पहले भारतवर्ष को एक राष्ट्र बनाने की चेष्टा करते रहे हैं।

(२) नागरी लिपि और भारतीय वर्णमाला

ध्यान रहे कि हिन्दी भाषा जितनी व्यापक है, नागरी लिपि उससे कहीं अधिक व्यापक है। उसे हिन्दी के अतिरिक्त मराठी, पर्यतिया और संस्कृत, तथा कभी कभी पञ्जाबी और सिंधी

^१ नीचे दिए व्योमार्कित हिन्दू व्युत्पन्न और नि प्रिन्सिपल ले वेजेन और हाइया (मानवत्व का प्रथम भाषाओं का भौगोलिक वर्गीकरण) ज० दसवें भाग १० प० ५० पृ० जनवरी १८५०

में बसती हैं। सुन्दरती की दुसरे पहले पहले नगरी में लगी
 भी बाद में वहाँ से ही या सुन्दरती तिरि चल पड़ी।

बनते बहिरिह भारती बरानला नगरी तिरि से भी
 जगित व्यापक है, तथा वलही रहता एक बरबाद को जोड़ कर
 लगे भरतवर्ग को रहता को सुविष्ट करती, प्रत्युत वलही
 सीमाओं को भी लोभ गई है, इन बात की ओर पहले पहले
 इन दुसरे में ही खान दितला जा रहा है। वैसे बिना
 को यह बात सुनियेते हैं, पर कतरबर्ग है कि भारतवर्ग की
 रहतविरिधता के विचार में 'सुन्दरती सुनितो कौन सुन्दरती'
 (भारतवर्ग की सुनियेते रहता) के लगेत हा० सुनितो का भी
 खान इन ओर लगे गया। सुनितो लगेत हा० सुनितो शारदाबारा
 निव के लगेत में जगित भारती बरानला की रहता और बरानला
 रही है कि भारतवर्ग की सब भारती नगरी तिरि में लिली करी।
 वह बिना सुनितो रहतवर्ग है, प्रत्युत वलही यह बहते हैं कि
 वहाँ वहाँ भारती बरानला है वहाँ वह नगरी तिरि में ही
 लिली लगेत लगे। इस सम्बन्ध में सुनितो की ओर खान दितले
 की बरानला है।

एक को यह के भारतवर्ग की तथा भारती बरानला बरानला
 वाली लहर की भारती के बरानला भारती का नगरी तिरि में
 लगेत और बरानला होने बरानला है, विनिते इन
 भारती के बरानला वाली की नगरी लगेत का बरानला हो।
 विनिते लगेत भारती लगेत में भारती में बरानला होने से लगेत
 बरानला होने एक लगेत भारती के यह बरानला लगेत
 लगेत और भारती भारती में लगेत लगेत है, लगेत भारती में
 में लगेत यह लगेत लगेत है, लगेत भारती के लगेत लगेत में
 लगेत का लगेत हो लगेत में लगेत का लगेत लगेत में 'लगेत'
 लगेत हो गया है, लगेत भारती का भारती लगेत

नागरी में निकल जाने से उसका उमसे दूना प्रचार हो जायगा दूसरे, श्रीगुरु-ग्रन्थ-साहेब के, जो समूचे पंजाब और सिन्धु पड़ा जाता है। आश्चर्य है कि अभी तक नागरी में उसका अच्छा संस्करण नहीं हुआ, क्योंकि उसकी बहुत थोड़ी बाणि पंजाबी भाषा या बोली में हैं, अधिक बाणियों पुगती हिन्दी ही हैं, और कुछ मराठी में भी।

दूसरी बात नागरी की पूर्णता के विषय में। उसकी जी शोल प्रती संसार भर की वर्णमालाओं के विद्वान् 'दि आल्फाबेट' (वर्णमाला) के लेखक सर आइजक टेलर तथा अरिहान पेरी जैसे व्यक्तियों ने बुझे हैं। किन्तु हमें उस प्रशंसा से फुल न जाना चाहिए। भारतीय वर्णमाला वर्तमान बाली बाहर की आधुनिक भाषाओं और बोलियों के सब उच्चारण प्राचीन संस्कृत वर्णमाला के नागरी रूप में ठीक ठीक प्रकट नहीं हो पाते। उदाहरण के लिए 'कैश्य' के संस्कृत ऐ (यइ) तथा 'बैठक' के हिन्दी ऐ (य) हम एक ही तरह लिखते हैं, इसी तरह 'गौर' और 'घौर' के 'ग' और 'घौ' को। चीनी, तिब्बती, कर्मीरी और परतो में ए के बजाए एक दया हुआ उच्चारण तू और सू के बीच होता है, अंग्रेजी में एसे ए लिखते हैं, जिसे अनजान हिन्दी लेखक 'रस' समझ लेता है। वैसा ही लिख जाते हैं, जैसे 'होने रसांग' ! वह उच्चारण मराठी में भी है जहाँ वह 'व' ही लिखा जाता है। क्यों न उसके लिए एक अलग संकेत हो ? इस प्रकार तिब्बती, तेलगु, सिंहली आदि में ह्रस्व एकार और ओकार हैं। ह्रस्व ए हिन्दी में भी है, जैसे छाप्पर (छड़की) लेखन (लेखनी) कुकड़ (मुँह) कुछड़ी) आदि शब्दों में। अंग्रेजी के उसी उच्चारण को प्रकट करने के लिए नागरी वालों को बड़ा परेशान होना पड़ता है। क्यों न उसके लिए तेलगु की तरह एक अलग संकेत हो ? इस प्रकार के अन्य बिन्दुओं की भी जरूरत होगी, जिनमें से कुछ केवल

विद्वानों के काम आयेंगे और कुछ सर्वसाधारण के भी। किसी प्रामाणिक संस्था द्वारा उनके प्रकाशित होने की आवश्यकता है। उन के बिना नागरी को भारतीय वर्णमाला के समान व्यापक बनाने का सपना कभी सफल न होगा।

(३) उर्दू

भारतीय वर्णमाला की तरह भारतीय परिभाषाओं की एकता भी बहुत व्यापक है, और भारतीय एकता के प्रश्न में उसकी तरफ पहले पहल इस पुस्तक में ध्यान दिलाया जा रहा है। जनता में विज्ञान का प्रचार होने के लिए पारिभाषिक शब्द जहाँ तक ठेठ बोलचाल की बोली के हो सकें उतना अच्छा, किन्तु ऊँची परिभाषायें समूचे भारत के लिए संस्कृत-मालि की ही होंगी।

ध्यान रहे कि जब हम समूचे भारत की एक वर्णमाला और समान परिभाषाओं की बात कहते हैं, तब उर्दू हमारे कथन का अपवाद होती है। इन अंशों में उसका भारत की सब भाषाओं से विरोध है, किन्तु दूसरी तरफ उसकी रीढ़ और बुनियाद उस बोली से घनी है जो भारत की राष्ट्रभाषा है। हिन्दी में जो तत्सम शब्द हैं वे प्रायः बंगला मराठी गुजराती तेलगु आदि अन्य भारतीय भाषाओं के समान हैं, और तद्भव शब्द उन से जुड़ा। उर्दू के तद्भव शब्द ठीक हिन्दी के हैं, किन्तु तत्सम वह फारसी-अरबी से लेती है। इस प्रकार भारतवर्ष की दूसरी भाषाओं से न उसके तद्भव मिलते हैं, न तत्सम। हिन्दी वालों के लिए जहाँ वह केवल एक शैली का भेद है, वहाँ दूसरी भाषाओं वालों के लिए वह सोलह आना विदेशी भाषा और लिपि है। हिन्दी-उर्दू का यह भेद उन साधारण तत्सम शब्दों में ही प्रकट होने लगता है जो प्राथमिक शिक्षा में या रोज के व्यवहार में काम आते हैं। नमूने के लिए हिन्दी 'समन्विबाहु त्रिभुज' के लिए बंगला मराठी तेलगु आदि ने या तो ठीक वही शब्द या मिलता

नें, जिनकी भाषा असल में गुजराती बंगल लिये सिन्धी है। सिन्धी के पञ्जाब गुजराती को अपना लिया है। सिन्धी ने अपना वह प्रदेश उदात्तापूर्वक गुजरात को सौंप दिया है। दूसरे, सिन्धी का अपने पड़ोस और दूर की सभ्य भारतीय भाषाओं— पड़ोस की हिन्दी, गुजराती और मराठी से, तथा दूर की बंगला वगैरा सभी भाषाओं—से सम्पन्न नहीं हो सकता। इन भाषाओं के वाङ्मय-विकास के लिए आपस का आदान-प्रदान बितना आवश्यक है, सो करने की जरूरत नहीं। मारवाड़ का थर और कच्छ का रन सिन्धी को शेष भारत में उस तरह अलग नहीं कर सकते जैसे अरबी अक्षर ! तीसरा और सबसे घुरा परिणाम एक और हुआ है। अरबी अक्षर भारतीय शब्दों भारतीय नामों और भारतीय विचारों को पकट करने के लिए उद्युक्त नहीं हैं। भारत-वर्ष के तमाम विद्यमान प्रान्तिक वाङ्मयों की बुनियादें दो हैं; एक तो संस्कृत या पालि वाङ्मय जिनके अनुवादों के आधार पर प्रत्येक नई भारतीय भाषा पहले पल रखी होती है, दूसरे पच्छिमो जगन् की नई विचारों और विज्ञान जिनके विचारों को अपना कर भारतवर्ष के तमाम देशी वाङ्मय पुष्ट हो रहे हैं। किन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं भारतवर्ष की नई भाषायें पारचात्य विद्याओं और विज्ञानों को भी संस्कृत या पालि की सहायता के बिना नहीं अपना सकतीं, उन्हें अपनाने के लिए परिभाषाओं की जरूरत होती है जो संस्कृत या पालि के धातुओं से ही ढाली जाती हैं। जो भाषा इन परिभाषाओं को न लेगी वह तुच्छ आरम्भिक ज्ञान में आगे न बढ़ सकेगी। सिन्धी इन दोनों महारों को खो बैठी है। अभी तक उसका वाङ्मय बिलकुल आरम्भिक दशा में है, और अब भी अपना माग बदल लेता उसके लिए बहुत सुगम है। सिन्धी के आन्दोलनों महा-राष्ट्र के चित्रावन प्राल्लवों की तरह भारतवर्ष को सबसे

वाङ्मय के विकास-मार्ग में वही बड़ी रुकावट बनी हुई है जो सिन्धी की राह में है। फिर गुरुमुखी लिपि का भी पंजाब पर पूरा अधिकार नहीं हुआ, नागरी और गुरुमुखी दोनों साथ साथ चलती हैं, यद्यपि एक को जानने वाला दूसरी को घंटे दो घंटे में सीख सकता है, इसलिए बहुत लोग दोनों जानते हैं। कांगड़ा और चम्बा के पहाड़ी प्रदेश में शारदा का विकार टकरी (मध्यकालीन टक देश अर्थात् स्यालकोट-प्रदेश की) लिपि चलती है।

पंजाबी का वाङ्मय बहुत ही साधारण है। गुरु-ग्रन्थ-साहेब का पाठ वहाँ सब से अधिक होता है, पर उसका अधिकांश पुरानी हिन्दी में है; थोड़ा सा अधिक प्रचलित अंश पंजाब की बोलियों में है—अपनी पंजाबी में तथा जन्मसाखी पंजाबी-घुली हिन्दीकी में।

मेरा पहले यह मत था कि पंजाब की शिक्षा-दीक्षा की भाषा हिन्दी होनी चाहिए, किन्तु अब मैं 'पंजाबी' के पक्ष में हूँ। 'पंजाबी' से मेरा अभिप्राय 'पूरबी पंजाबी' या नैरुक्तों की पंजाबी से नहीं जिसे एक भाषा बनाने का भरसक जतन हो रहा है, प्रत्युत उस पार की बोली से है जहाँ गुरु नानकदेव ने जन्म लिया था, और जो पंजाबी तथा हिन्दीकी के ठीक घोल को सूचित करती है, जिसमें कि जन्मसाखी लिखी गई है। मैं यह समझता हूँ कि पंजाबियों को भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा से परिचित होने की अपेक्षा भारतीय वर्णमाला से परिचित होना अधिक आवश्यक है, वह उद्देश हिन्दी की अपेक्षा उनकी अपनी बोली द्वारा अधिक सुगमता से पूरा हो सकता है, इसी-लिए नागरी लिपि में पंजाब की बोली का एक भाषा के रूप में विकास होना, मेरी दृष्टि में, पंजाब के लिए हितकर होगा।

(४) कपिश-करमीर की

पंजाब की तरह कपिश-करमीर की भी समस्या है। इस समूचे प्रदेश में करमीरी ही सुगमता से साहित्यिक भाषा बन सकती है, और पिछले चालीस एक बरस से उसे पैसा बनाने का जतन भी हो रहा है। किन्तु अभी तक वह जतन सुन्न कर नहीं किया गया, और उस रुग्णगाइड के कई कारण हैं। करमीर में संस्कृत का राज रहा है, वह संस्कृत अभ्ययन का सदा केन्द्र रहा है। शुरू में नई दुनिया का संसर्ग होने पर नये व्यवहार के लिए जब एक भाषा की जरूरत हुई तो करमीरियों का ध्यान संस्कृत की ओर ही गया। पिछले महाराजा ने आरंभ में युरोपियन प्रौढी कवायद के शुभ्र भी संस्कृत में तैयार करण के ज़ारी कराये थे^१ ! किन्तु संस्कृत इस अमाने की व्यावहारिक भाषा न बन सकती थी, और अब करमीर पर बहू-हिन्दी का शासन चल रहा है। करमीरी की स्थिति वहाँ पंजाब में 'पंजारी' की तरह है। उसकी स्थिति को वहाँ रह कर अपनी भाँसों देख कर मैं अपनी अन्तिम सम्मति बना सकूँगा, तो भी निज्जाफ़ मेरा यह मत है कि करमीरी बोली को वाङ्मय-सम्पन्न भाषा बनाने का पूरा जतन होना चाहिए, और यद्यपि पिछले समय में करमीर में संस्कृत का पढ़ना-लिखना शारदा लिपि में होना रहा है, तो भी नई करमीरी भाषा को नागरी में लिखना जाट करना चाहिए।

(५) अजगानिम्मान की

अजगानिम्मान में कारसी ने परनो को बिगड़ना देखा रक्खा है। परनो^२ एक दिव्या जानदार भाषा है, और उसमें कुछ वाङ्मय

१. इसका मंजूर का बुझा है।

२. परनो और कर्नो एक ही भाषा की दो बोलियाँ हैं। दोनों में अन्तर नाम का, केवल बोड़े से उच्चारणों का है। वह अजगान-मेर उप

भी है। उसमें ऊँचे विचारों का प्रकाशन आसानी से हो सकता है, और उसका पूरा वाङ्मय-विकास होना चाहिए। इस समय फ़ारसी को प्रधानता देने के कारण अफ़ग़ानस्थान की जातीय एकता भी घनी नहीं रही, और उसकी तथा भारतवर्ष की ठीक जातीय सीमाएँ बतलाना भी कठिन हो गया है। परतो के उद्धार से वह समस्या बहुत कुछ सुलझेगी। इतिहास की दृष्टि से यह प्रश्न महत्त्व का है कि अफ़ग़ानस्थान की पार्सीवान जनता कब से पार्सीवान घनी है? या बाहर से आई है? यदि वह पुरानी हो तो यह सोचा जा सकेगा कि संस्कृत वाङ्मय का पारसीक^१ शब्द शायद उसके लिए हो। किन्तु मेरा विचार है कि वह इतनी पुरानी नहीं है।

दोनों के नामों से प्रकट है। जहाँ हम एक का नाम लें वहाँ दूसरी को स्वतः साथ ही समझ लेना चाहिए।

१. नमूने के लिए मुदराहस्त १, २० में। रघुवंश ४, ६० के पारसीकों से फ़िल्हाल हम सात्तानी राजा समझते हैं, क्योंकि सात्तानियों से पहले भर्षात् २२५ ई० तक फ़ारिस पायँव कहलाता था, उसका नाम पारस प्रचलित ही न था। इस प्रकार कालिदास का समय सात्तानी बंश से पहले नहीं हो सकता। किन्तु यदि वहाँ पारसीक का अर्थ पार्सीवान हो तो यह युक्ति न दो जा सकेगी, यद्यपि उस विशेष प्रकरण में मेरे विचार में पार्सीवान अर्थ किसी तरह नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे पारसीक 'पार्थाव' थे, उत्तरापथ के नहीं।

यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष के ही सब प्रान्तों और पड़ोसी देशों के स्थानों व्यक्तियों आदि के नाम नागरी में ठीक ठीक लिखने के लिए कुछ नये चिह्नों की भी जरूरत होगी। इस सम्बन्ध में परिशिष्ट २ (२) में भी कहा जा चुका है। मैंने यैमे कुछ चिह्न भारतीय तौर पर बना भी लिये हैं, किन्तु टाइप में वे भी प्रकट न हो सके। य और च के भेद के विषय में दे० ऊपर पृ० १० टिप्पणी। मैसूरु, मिहली और निम्बली के कई राज्यों का इत्यवहार और आंध्र टाइप के अभाव से प्रकट नहीं हो सका, जैसे (मि०) महाबलिगग, मिनिहोई, (ते०) पेरवगू, (ति०) शोर्नेजिहू, और शायद बनकाई, दिहोह आदि आमास-मीमास के नामों में भी। वैदिक सभ्यता में मूर्धन्य स के लिए अक्षर चिह्न है जो मगडी आदि में भी चलता है। दुर्भाग्य से हिन्दी छापेमानों में यह भी नहीं रहता। आकाशना और वसा (राजस्थानी), पन्हाला निमंत्र, वेदस, वचनमात्र, मानमात्र और मात्र (मराठी), बन्नागी बंगलूर, कोन्नगात्र और गगावली (बनासो), पत्रतनी (तामिल), रिदुदनभागात्र, गत्र और समनत्रकन्द (मिहली) आदि मात्र और एवम त्रिन प्रान्तों के हैं, इनके अलग जब इनमें द्रव्य स पोंत (कोन्नगात्र स पदन और रिदुदनभागात्र में दूसरे स्थान में), अथवा वैदिक सभ्यता के परिचित जब "पेत्त" वा "व्येत्त" (पृ० २९०) में द्रव्य स देखेंगे, तो उन्हें यह स्पष्ट होगा। अपनी साक्षाती के लिए मैं इनमें कमा चाहता हूँ।

इसके अनिश्चित दूसरी बड़ी समस्या है एक भारतीय भूगोल कोष की, जिसे इस-वगैर व्यक्तियों के सहयोग से कोई अच्छी संस्था तैयार कर सक्ती है। ऐसे कोष के बिना भारतीय भूगोल की गवर्णियों में क्या नई सज्जे—'भौगोलिक आधार' के बारे में संश्लेष में मैंने भी कई गहन नामों का प्रयोग किया था और यह भी हिमो हिमो नाम के विषय में मेरे मन में सन्देह बना हुआ है।

[illegible][illegible]

का ही अर्थ था। किन्तु अब तक संस्कृत, पहाड़ी और हिन्दी भाषाओं के परिचित इस विवाद का फैसला न कर रहे हैं, वे अक्षता शब्द बर्णना ही ठीक समझा।

आवरणरुता होने पर संस्कृत परिभाषायें गढ़ने का मैं विरोधी नहीं हूँ। इस प्रकार "कैचमेट एरिया" के लिए शब्द कोई बोलचाल का शब्द हो, पर मुझे अभी तक वह नहीं मिला, इसलिये 'प्रत्यय-क्षेत्र' शब्द मैंने गढ़ लिया है। वही प्रकार 'सिन्धुनल' के लिए 'अन्तः प्रत्यय'।

प्राचीन भारत का स्थल-विभाग



जब हम साधारण रूप से 'प्राचीन भूगोल' की कोई परिभाषा बर्तते हैं, तब यह याद रखना चाहिए कि प्राचीन काल कुछ थोड़े से दिनों या दशकों का न था, और उस समूचे काल में भारतवर्ष के भौगोलिक विभाग और प्रदेशों के नाम एक से न रहे थे। जातिकृत और राजनैतिक परिवर्तनों के अनुसार भौगोलिक संज्ञायें और परिभाषायें भी बदलती रहीं हैं। तो भी बहुत सी संज्ञायें और परिभाषायें अनेक युगों तक चलती रही हैं, और यद्यपि उनके लक्षण भी भिन्न भिन्न युगों में थोड़े-बहुत बदलते रहे हैं तो भी उन विभिन्न लक्षणों की भी मानों एक औसत निकाली जा सकती है। हमने साधारणतया प्राचीन भूगोल की जो परिभाषायें बर्ती हैं, वे वही हैं जो प्राचीन काल के अनेक युगों में थोड़ी-बहुत रहोबदल के साथ लगातार चलती ही रही हैं, और उन परिभाषाओं का प्रयोग भी हमने उनके "औसत" अर्थ में ही किया है।

यहाँ मुझे विरोध कर प्राचीन भारत के स्थल-विभाग के विषय में कुछ कहना है। प्राचीन भारत के 'नव भेदाः' करने की भी एक शैली थी। बराहमिहिर ने बृहत्संहिता अ० १४ में मध्यदेश के चौगिर्द आठों दिशाओं में एक एक विभाग रख कर कुल नौ विभाग किये हैं। किन्तु उन वर्णन में बहुत गोलमाल है, नमूने के लिए विदर्भ (वराह) को आग्नेय कोण में (श्लोक ८) और कीर (कांगड़ा), कश्मीर, अभिसार दरद को ईशान

संशोधन और परिवर्धन

—७७:०:६८—

- १० ५० २३ तथा ३३—२४, २५, जड़ या जड़ मूत्र में भी होता है और वहाँ यह छोकर कहलाता है। इस लिए शमी को डिम्बी में छोकर ही कहना चाहिए।
- ३४—१, १०; बंगला 'बाल' का ठीक समानार्थक मंत्रभाग का गार शब्द है। माने जाता।
- ४२—११, १३—१८; मासकन्द सायब वर्णनही, भोज है
- ४८—२४, शमी न कि ममिया।
- ८४—२६, १४७—७, ७७ उदुर न कि बहर।
- ८९—७; गुणि न कि गृही।
- १०—४; शोकाग्न या मयराग न कि शिवराग।
- ६०—१४, पण्डित न कि पूज।
- ११४—१०, चार्ये चार्ये न हि चार्ये चार्ये।
- १३७—१४; पूजनी न हि बनगी।
- १४०—१४, पूज न हि पण्डित।
- १६१—१, सहस्रनिशा (चैतुर्ध्व) न हि गोमेद।
- १३—३४; माग कदाचित् को बंगला भाषा में धर निध है, इसलिये ऊँह बंगाल में मिलना होगा न कि अगम्य में।
- ३०१—१८; सहस्रनिशा (चैतुर्ध्व) न हि पूजा।

अनुक्रमणिका

(श्रीमती सरस्वतीदेवी काव्यवार्थ साहित्याचार्य तथा
श्रीमती सुमित्रादेवी शास्त्री द्वारा संकलित ।)



अ. ग्रन्थनिर्देशविषयक

[केवल उन्हीं ग्रन्थों के नाम मुख्य अक्षरादिक्रम में दिये
गये हैं जिनके कर्त्ताओं के नाम साथ नहीं हैं । पृष्ठकर लेखों के
शीर्षक नहीं दिये गये । बिना निर्देश की संख्याएँ पृष्ठों की हैं ।]



अथर्व वेद, २६०-१ ।	इमाद्वैतसिद्धि साहित्यिका, १३
अभिधर्मशूत्र, १०१ ।	मं०, जि० २०, १०४ ।
अनुराधा—महर्षिः क. प. हिन्द, २१२ ।	अथर्व, २०, १८, ४०, १४२,
अवगता, १२० ।	१८८, २१८, २२७ ।
अथर्वग, पुनः कृत्यशाली, १०२ ।	एतिहासिका इतिहास जि० १, ११४;
आदित्यपद अथर्वग ११ ।	जि० २, २१६; जि० ५,
इतिहास—इतिहाससूत्रिका क्रम- १०८ ।	
सप्त भाग इतिहास १०६ ।	एतिहासिक, अथर्वग ८ ।
इतिहास अथर्वग जि० १२, ११२	देवता अथर्वग इतिहास जि० १, २०६-७ ।
जि० १८ १०२, ११०	देवता अथर्वग १२०
इतिहास १०६ ११३-१४ ११४-१५	अथर्वग अथर्वग ११४ ११५
११६	अथर्वग ८

भोगा, गीरीशंकर ई हावन्द, ३१
१०६ ।

औषधकृतं सर्वे औषु दि सिद्धि
एवापत्, ३४५ ।

कविगङ्गाय — भार्गवोमीश्वरसर्वे
औषु इतिवा सिद्धे न सि-
द्ध, ३१६, सिद्ध ६, १०५,
सिद्ध १४ ३१० सिद्ध १३,
३१६ ।

कविगङ्गाय — भार्गवोमीश्वरसर्वे,
१०१ १०५ १४, १०५,
३१६ ।

कविगङ्गाय, हावन्द, १०६ ।

कविगङ्गाय — भार्गवोमीश्वरसर्वे,
— एवापत्, ३० १३५, १६१,
१६३ १६३ १६३ १६३,
१६३ १६३ ३, १६३-३
३३५ ।

कविगङ्गाय, १३ ।

कविगङ्गाय दि सिद्धि औषु इतिवा सिद्ध
१, ३३३ ।

कविगङ्गाय — भार्गवोमीश्वरसर्वे,
३३५ ।

कविगङ्गाय — भार्गवोमीश्वरसर्वे, ३३५ ।

कविगङ्गाय १०५ १३ १३ १३ १३ १३
३३ ३३ ३३ ३३ ३३ ३३

३३५; — सिद्धिगङ्गा सर्वे
औषु इतिवा १६१, १०५,
१३३ ५, १३५ १०, १३३,
१३३, १३६, १३३, १०५-
१ १०५, १३३, १३३-१,
३३५ ।

कविगङ्गाय, हावन्द, १०६ ।
कविगङ्गाय हावन्द सिद्धि-
गङ्गाय औषु दि सिद्धिगङ्गाय
सर्वे, ३ ।

कविगङ्गाय हावन्द, ३३ ।

कविगङ्गाय दि सिद्धिगङ्गाय सर्वे
औषु इतिवा सिद्धिगङ्गाय, सिद्ध ३३५,
३३५, सिद्ध ३३५, ३३५, ३३५ ।

कविगङ्गाय दि सिद्धिगङ्गाय औषु इतिवा
सिद्धिगङ्गाय ३३, ३३५ ।

कविगङ्गाय हावन्द हावन्द सिद्धि
औषु इतिवा सिद्धिगङ्गाय ३३५, ३३५,
सिद्ध ३३५, ३३५, ३३५ ३३५ ।

कविगङ्गाय हावन्द औषु दि सिद्धिगङ्गाय
सर्वेगङ्गाय सर्वेगङ्गाय ३३५
३३५ ।

कविगङ्गाय दि सिद्धिगङ्गाय हावन्द
सिद्ध ३३५, ३३५, सिद्ध ३३५
३३५, सिद्ध ३३५ ३३५
सिद्ध ३३५ ३३५ ।

इष्टिष्ट टा टूशन मौगनलो-
दिनन मेसलनाष्ट जि०
६४, २४६ ।
निक, २४-४, ३९, १६०, १८९;
कुण्डकुण्डित्तिन्धव, ३०;
कुण्डम, ३११; कुण्डकलिग,
१०२, २११; भटमान ३६;
महाजनक, १८९; वलाहम्म,
१८९, ३०६; समुद्रवाणिज,
३०६; सुधारक, १८९; मुन्मो-
किन्द, ८९१ ।

जायसवाल, १७६, १८९ ।
तामस, टा०, १८३ ।
तामसी, १६४ ३०७, ३१० ३४८ ।
टेलर, मर भाइरुह—दि आल्फा-
बेट, ३३० ।
टैविह्म, टा० राइज, १९९ ।
मारीन-ए-मोस्ट, २७४ ।
मोगस लीगिदम, ३१४ ।
मेरी अद्वान, १६१, ३०७ ।
मेरीगाथा ३०७ ।
हॉल्लिफाव अद्वान ३१ ।
हॉल्लिम १६६ ।
हॉल्लिफाव ३३-३ ।
हॉल्लिफाव पराग १३६

धम्मपाल परमथदीपनी ३०७ ।
नलोपाग्यान, देगिये महाभारत ।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका
जि० १, ७१; जि० ३, ७०,
७३० ।

नेफ़ॉल्ट २७५ ।
पतंजलि—महाभाष्य, ३५०-१ ।
पाणिनि—अष्टाध्यायी, १६०,
२२६, ३३१, २७६ ।
पार्जोटर ५२-३, २०६;—एग्वण्ट
इंडियन हिस्टोरिकल टूटीशन,
२१, ३१, ९३, १६९,
१८४ २०५, २११, ३३४,
२५१ ३०६;—मार्कटेड
पुराण २३८, ३०८,
३३८ ९ ।

पिनाल—ग्रामटिक टा ग्राहक
कमान, ३४६ ।
पुराण २०६-७, ३३८, ३५० ।
रेविह्म भीष्ट दि इंडियन
सी—७५, ३८६ ।
रेनी मर अद्वान, ३३८, ३३०,
३३३ ।
लेविह्म मारुम्म वार्टनी जि०
३४, ९ ३९४ ।
ग्रामटिक टा इंडियन सी

मूलनिर्माण, २४-५, २०११

1999

मेलिथीन-इथनोमिड इथरिटेज

द्विचरितम्, ११।

भौद्विष्टी, १२।

दि० श्रीराष्ट्रमास, ३४५ ।

આશ્રમ, મર બૌદ્ધ, ૩૪૫ ।

इष्टतम, डा०. बी.बी.स. : इतिहास.

संज्ञा, ३२४ ।

नमः इति चेत्, त्रिः

શિવજી, જા. વિઝ્યોસ્ટુ-ભીજવજાદું

2.30.1

दिनांक: ०१/०८/२०१८

शारंगी, डा० कटोवाल, बमौरी

• E_1 \rightarrow E_2 \rightarrow E_3 \rightarrow E_4

आमर और दि गीर्दाम

Doc # 753-V-4487

सिंहसिंह, १५१।

दिग्दर्शक: श्री. क. क. क.

द्वितीयः पत्रः

इ. माथारगग

[महेन—आ = आचार्य विद्वान्, व = वल्लभ, वल्लरी, आ = आनि, यश, ज्ञान, जन आदि, वि = विद्या, प्रदेश; जो = जोन वा जरा, भी = भीरु, व = वसिष्ठ वसिष्ठजी, वे = वेरा, प्राग्ज, जनार्दन, डी = डीप, न = नदी, वसन्ती पाटी वा काटी, व = वसंत वसंतभृत्यभा, पू = पूरव, पूरबी, प्र = प्रवीण्य, वसिष्ठस्य, व = वसन्ती गाँव, उदर विद्या, वन्द्यगाह वा = वीभी, भाषा (निवि, वाहमय वल्लभाभा, ग = राजा, न = नगर, इद, मे = मेनापति ।]

[illegible]

१०१, माहाना ०१११

मार्ग की दूरी ५५.३६ कि.मी.

[illegible][illegible]

अथवा वा अथवा १३३ ३००

01-0000000000000000

0123456789

1000 2000 3000 4000 5000 6000 7000 8000 9000 10000

NOTES

www.ck12.org

■ ■ ■ ■ ■

Abstract

1999, 2000, 2001, 2002, 2003, 2004, 2005, 2006, 2007, 2008, 2009, 2010, 2011, 2012, 2013, 2014, 2015, 2016, 2017, 2018, 2019, 2020, 2021, 2022, 2023, 2024, 2025, 2026, 2027, 2028, 2029, 2030, 2031, 2032, 2033, 2034, 2035, 2036, 2037, 2038, 2039, 2040, 2041, 2042, 2043, 2044, 2045, 2046, 2047, 2048, 2049, 2050, 2051, 2052, 2053, 2054, 2055, 2056, 2057, 2058, 2059, 2060, 2061, 2062, 2063, 2064, 2065, 2066, 2067, 2068, 2069, 2070, 2071, 2072, 2073, 2074, 2075, 2076, 2077, 2078, 2079, 2080, 2081, 2082, 2083, 2084, 2085, 2086, 2087, 2088, 2089, 2090, 2091, 2092, 2093, 2094, 2095, 2096, 2097, 2098, 2099, 2100, 2101, 2102, 2103, 2104, 2105, 2106, 2107, 2108, 2109, 2110, 2111, 2112, 2113, 2114, 2115, 2116, 2117, 2118, 2119, 2120, 2121, 2122, 2123, 2124, 2125, 2126, 2127, 2128, 2129, 2130, 2131, 2132, 2133, 2134, 2135, 2136, 2137, 2138, 2139, 2140, 2141, 2142, 2143, 2144, 2145, 2146, 2147, 2148, 2149, 2150, 2151, 2152, 2153, 2154, 2155, 2156, 2157, 2158, 2159, 2160, 2161, 2162, 2163, 2164, 2165, 2166, 2167, 2168, 2169, 2170, 2171, 2172, 2173, 2174, 2175, 2176, 2177, 2178, 2179, 2180, 2181, 2182, 2183, 2184, 2185, 2186, 2187, 2188, 2189, 2190, 2191, 2192, 2193, 2194, 2195, 2196, 2197, 2198, 2199, 2200, 2201, 2202, 2203, 2204, 2205, 2206, 2207, 2208, 2209, 2210, 2211, 2212, 2213, 2214, 2215, 2216, 2217, 2218, 2219, 2220, 2221, 2222, 2223, 2224, 2225, 2226, 2227, 2228, 2229, 2230, 2231, 2232, 2233, 2234, 2235, 2236, 2237, 2238, 2239, 2240, 2241, 2242, 2243, 2244, 2245, 2246, 2247, 2248, 2249, 2250, 2251, 2252, 2253, 2254, 2255, 2256, 2257, 2258, 2259, 2260, 2261, 2262, 2263, 2264, 2265, 2266, 2267, 2268, 2269, 2270, 2271, 2272, 2273, 2274, 2275, 2276, 2277, 2278, 2279, 2280, 2281, 2282, 2283, 2284, 2285, 2286, 2287, 2288, 2289, 2290, 2291, 2292, 2293, 2294, 2295, 2296, 2297, 2298, 2299, 2300, 2301, 2302, 2303, 2304, 2305, 2306, 2307, 2308, 2309, 2310, 2311, 2312, 2313, 2314, 2315, 2316, 2317, 2318, 2319, 2320, 2321, 2322, 2323, 2324, 2325, 2326, 2327, 2328, 2329, 2330, 2331, 2332, 2333, 2334, 2335, 2336, 2337, 2338, 2339, 2340, 2341, 2342, 2343, 2344, 2345, 2346, 2347, 2348, 2349, 2350, 2351, 2352, 2353, 2354, 2355, 2356, 2357, 2358, 2359, 2360, 2361, 2362, 2363, 2364, 2365, 2366, 2367, 2368, 2369, 2370, 2371, 2372, 2373, 2374, 2375, 2376, 2377, 2378, 2379, 2380, 2381, 2382, 2383, 2384, 2385, 2386, 2387, 2388, 2389, 2390, 2391, 2392, 2393, 2394, 2395, 2396, 2397, 2398, 2399, 2400, 2401, 2402, 2403, 2404, 2405, 2406, 2407, 2408, 2409, 2410, 2411, 2412, 2413, 2414, 2415, 2416, 2417, 2418, 2419, 2420, 2421, 2422, 2423, 2424, 2425, 2426, 2427, 2428, 2429, 2430, 2431, 2432, 2433, 2434, 2435, 2436, 2437, 2438, 2439, 2440, 2441, 2442, 2443, 2444, 2445, 2446, 2447, 2448, 2449, 2450, 2451, 2452, 2453, 2454, 2455, 2456, 2457, 2458, 2459, 2460, 2461, 2462, 2463, 2464, 2465, 2466, 2467, 2468, 2469, 2470, 2471, 2472, 2473, 2474, 2475, 2476, 2477, 2478, 2479, 2480, 2481, 2482, 2483, 2484, 2485, 2486, 2487, 2488, 2489, 2490, 2491, 2492, 2493, 2494, 2495, 2496, 2497, 2498, 2499, 2500, 2501, 2502, 2503, 2504, 2505, 2506, 2507, 2508, 2509, 2510, 2511, 2512, 2513, 2514, 2515, 2516, 2517, 2518, 2519, 2520, 2521, 2522, 2523, 2524, 2525, 2526, 2527, 2528, 2529, 2530, 2531, 2532, 2533, 2534, 2535, 2536, 2537, 2538, 2539, 2540, 2541, 2542, 2543, 2544, 2545, 2546, 2547, 2548, 2549, 2550, 2551, 2552, 2553, 2554, 2555, 2556, 2557, 2558, 2559, 2560, 2561, 2562, 2563, 2564, 2565, 2566, 2567, 2568, 2569, 2570, 2571, 2572, 2573, 2574, 2575, 2576, 2577, 2578, 2579, 2580, 2581, 2582, 2583, 2584, 2585, 2586, 2587, 2588, 2589, 2590, 2591, 2592, 2593, 2594, 2595, 2596, 2597, 2598, 2599, 2600, 2601, 2602, 2603, 2604, 2605, 2606, 2607, 2608, 2609, 2610, 2611, 2612, 2613, 2614, 2615, 2616, 2617, 2618, 2619, 2620, 2621, 2622, 2623, 2624, 2625, 2626, 2627, 2628, 2629, 2630, 2631, 2632, 2633, 2634, 2635, 2636, 2637, 2638, 2639, 2640, 2641, 2642, 2643, 2644, 2645, 2646, 2647, 2648, 2649, 2650, 2651, 2652, 2653, 2654, 2655, 2656, 2657, 2658, 2659, 2660, 2661, 2662, 2663, 2664, 2665, 2666, 2667, 2668, 2669, 2670, 2671, 2672, 2673, 2674, 2675, 2676, 2677, 2678, 2679, 2680, 26



कल्याणी व ८६, १०४ ।

कवि बो २७०-१ ।

कस्मीर दे १०, २०, २३, ३२, ४६,

५०, १११-२, १२२,

१३६-४५ १४८, १५३, १५६-

६२ १७२-३, १७५, १७७,

१८० २१६ २३१-५, २५६,

२७१, २८८-३००, ३०३,

३११-२, ३३८, ३४५, ३४७ ।

कस्मीरीजा बो ३०, ८५, ११०, १०५

१३६, १४१, १४३ १६२, २३१,

२४५ २५६, २६६ ३०२-३, ३३८ ।

कश्यप मातङ्ग भा २२८ ।

कहवात्र जि १३८, १४५, २३१-२ ।

कसई = कविता ।

कसू व ६१ ।

कमेह दे ३४८ ।

कसीसी व १५० ।

कहलगाँव व १७२ ।

कहलू जि १४७, १७४, २३३ ।

काभोकु = कावुक ।

काभोगी बो १३२ ३१३ ।

काकड़ व १२६, १३५ ३२० ।

कागने बो २६३ ।

कागना न ३२१-२ ।

कागवेनी व १५५ ।

कागात्र व १७७ ।

कांकडोल = ककडुल ।

कांकिर व व ६५ ।

कांगड़ा व जि १११-३ १४६-

१५०, १५९, १७३, २३२-३,

३२२, ३३७, ३४५, ३४७ ।

काजनाग व १४१-४ ।

कांजनग्रा व १०६, ११२-३,

११५, १५५, १५७ ।

कांठी या कांठीराम व १००,

१०३-४ ।

काठगोशम व ४४ ।

काठमाण्डू व १११, १५५-६, २०० ।

काठियावाड़ दे ६६, ६६, ७०, ८६

१८४, ३४० ।

काँथी व ३४० ।

कादम्ब ला २१५ ।

कावपुर व ५५, ७६-७, ३४४ ।

कावसू दे १२७, १७७, १७६-८०,

३०२ ३१४ ।

काथी = कुई ।

काविनी व १६० ।

काकिर जा बो २३०-१,

२४५-६ २६८ ।

काकिरिस्वान = कविता ।

कावुक व ४०, ४४ ४७, ४६, ५०,

१०७ १३३ १३७ = १५६-

६० १६२ १६४ १६६,

१६८. १७७ १८०, १८२-३. कालीकट व १८, १०० ।
 १८५. २००. ३२० ३४६; न कालीकुमारि जि १७२ ।
 ३८, ४३. ५४. १२७-६. कावेरी न ८७. ८६. ६० १०३
 १३१-२. १३६-७; २२५ २२६ २६० ।
 २४५, २६७. ३१६-२० । काशगर प = कन्दः न १२४.
 कामदेश कापिर जा १३७ । १७५; व १२७ ।
 कामरूप दे २००, २६५ । "कालिका" न ३१६ ।
 कामेत प ११५ १५१ । काशी व ३१, ३७, ४०-१, ४६, ५४.
 कामोत्त = कयोत्त । ८२ १८६, १६६. २०७-८.
 कारकुल पामार १२५ । ३५०; जि २०८ ।
 कारकोम प ११६-८ १२४ ३०४ काटकार = चितराल ।
 ३५१; जो १७५ ३०४-५ । कासराना बलोच जा २२४ ।
 कारचुकर न १२४ । काशियन सागर १०, १७६.
 कारहर न जि व २३१, ३१६ । काहा न ३२० ।
 कारूप दे जा ७६-८१. २०५ किगरी बिगरी जो १५३ ।
 २०७-८ । कितर जा दे १४८, २३४, २६६.
 कालक वन ३५० । ३०४-८. ३१५ ।
 कालका व १५०. २३३ । किपुरुप-विहार ।
 कालहोप २५५ । किरह जोह व १५५ ।
 काकपी व ५५, ७४. ७७ । किरात जि वो २६३-४, २६७ ।
 कालरादन प ६० । किराह जा २२१ ।
 कालाबाग व ४८ । किरात जा वो दे १७१, २६०-१.
 कालिजर व ७६. ८४ २०६ । २६४, २७१-२. २७६-८२.
 कालिदास आ २६१ ३०५ ३३६ । ३०५-६. ३०८, ३२६ ।
 कालिग्राह व १५७ किना सैफुल्ला व १८२ ।
 काला न (कुमाउ का) ११३ ११८ किलिक जो १२५ ।
 २३५ । जो-व क २३३ "कजन गता = कृष्णगता ।

कीर के २३४, ३४७ ।	२०२, २०४ २०७ ।
कीरमास २३४ ।	कुम्ह = भोगिन ।
कुभार न १२८, ३१६-२० ।	कुम्हजगम न ६१ ।
कुई जा को २३९, २४१-२ ।	कुर्दिमान के १३४, २४७ ।
कुहूकार व १६१ ।	कुर्मा वि २१४ ।
कुनी व १५५ ।	कुर्म न १२८-६, १८२, २२४ ।
कुनार न १२८ १३७ ८, ३१६-२० ।	कुणावी व २२४ ।
कुनिम जा के ३१०-११ ।	"कुनिम" जा के ३१० ।
कुन्मन के २१५ ।	कुनिद वा कुलिम्रीन = कुनिम ।
कुन्दा न १२९ ।	कुन्दा वा कुन्दा वि ४२, १११, ११३, १४८, १४३, १४६-६० १६३ १७१, २३२, २३४ २३६, २६४, ३१२, ३४५ ।
कुन्दिनी व ४० ।	कुन्क व १८२ ।
कुन्ज न १३१-३ व १३२ ।	कुन्ज जा १६२ ।
कुन्हार न १३६ १४१, १४३ १७७ ।	कुन्ज कुन्ज कुन्ज वा १७१ २२८ ।
कुविषदी व १४०-३ ।	कुर्वा विम को जा २६५-६ ।
कुमा = काकुल व ।	कुर्वविदा व ४८, १७४, २६५-७ ।
कुमाईनी को ११७, २४६ ।	कुवा व १२७; वि १७०, १७६ ।
कुमाई वि ११४, १५० १५०-३ १५०-६० १६६, १७१ २०१, २३२ २३४-६ २३८ २४१, २४६, २६३-४ ।	कुवा' वा 'कुवा' न ३१६, ३२० ।
कुमारी न ३१६-२० ।	कुव को २५६ ।
कुव न ७३ ।	कुमाँव = कुमाई ।
कुवममो व ७३ ।	कुम्हमांता न ११३, १२२, १३८-४७, २३३, ३०३ ।
कुव न १८३ ।	
कुम्हें व वि १० २८, ३१ ३६, ४६, ५१-४ ७६, १०४	

कोट चण्डू व १३२-३ ।	मारी मा २३६ ।
कोट मारी व १३२, १३३ ।	मरु व २२६ ।
कोटमारी १ १३० ।	मरुत त्रि २२२ ।
कोटमारी मा २३०-३ ।	मरुते व १३२, २३२ ।
कोटमारी व त्रि ३१ २३-५, १३३,	मरु मा मरुतिमा मा २३३, २३४,
२३५, २३६ व ।	२३६, २३७ ।
कोटमारी मा १३ ।	मरुतुमा को २३९, २४०, २४१-
कोटमारी व १३७ १३९ १४०-	२४ २४६, २४७ ।
१३ १३१-४ १३४ ।	मारी मा २३५ ।
कोटमारी को १३० ।	मरुतुमा व ३३ ।
कोटमारी व १३६, १३७ १३८	मरुतुमा त्रि ३१, ५१ मा, ३३,
१३९	३४, ३५, ३६ २४५ ।
कोट २३६ ।	मरुतुमा को २४० २४६ ।
कोटमारी व १३, ३३ ।	मरुतुमा २४५ ३३
कोटमारी व १३६ ।	मरुतुमा व ३३ ।
कोटमारी व १३६ १३७ ।	मरुतुमा मा को २३९ ।
कोटमारी व १३६ १३७-३	मरुतुमा मा को २३९-३ ।
१३६ १३७-३ २३७ ।	मरुतुमा मा १३९-३, १३९, १४०
कोटमारी ३३ ।	मरुतुमा व ५३ ५४ १३७-३
कोटमारी व ३३ ।	१३६ २३६ २३९, ३३७
कोटमारी व ३३ ।	२३६ २३७ १३७ ३३३
कोटमारी व ३३-३ २३७-३	कोटमारी २३३-३ ।
कोटमारी मा को २३७	कोटमारी मा ३३
कोटमारी व २३-३ २३७ १३७	कोटमारी मा ३३-३
कोटमारी व २३-३	कोटमारी मा ३३-३
कोटमारी व २३-३	कोटमारी मा ३३-३
कोटमारी व २३-३	कोटमारी मा ३३-३
कोटमारी व २३-३	कोटमारी मा ३३-३

गुणवत् ४५० ।	२०५, २०८ २१६, २३४-५,
गुणवत् ४५० ।	२४१, ३०३-१ ३५४
गुणवत् ४५० ।	३४८ ।
गुणवत् ४५० ।	गुणवत् ४५० १६५-५
गुणवत् ४५०-३ ३५२ ।	१६५ ३५८ ।
गुणवत् ४५०-१, ४५, ४८ १०६	गुणवत् ४५० ।
१०६-२ ।	गुणवत् ४५० ।
गुणवत् ४५० ३०० ।	गुणवत् ४५० ४० ४८, ४८
गुणवत् ४५०, १०२ ।	४०, १०२ १०२ २१५
गुणवत् ४५०-३, १०२-२	३२० ।
३०३-१० ।	गुणवत् ४५० १०३ ।
गुणवत् ४५० ।	गुणवत् ४५० ४१६, ४३, ४५,
गुणवत् ४५० १०५ ।	४८ १४४, १०३, २१५ ।
गुणवत् ४५०-३, ३०० ।	गुणवत् ४५०, २११ ।
गुणवत् ४५० २११ २३५, २३५,	गुणवत् ४५० ।
२३५ २३५ ३०३ ।	गुणवत् ४५० ३०३ ।
गुणवत् ४५० ।	गुणवत् ४५०-२, ११४, १५१
गुणवत् ४५० १०२ १०२ १०२	१०२, १०२, १०२-५
गुणवत् ४५० १०२ १०२ १०२	१०२, १०२, १०२ २११
गुणवत् ४५० १०२ १०२ १०२	१०२, १०२ ३०३ ।
गुणवत् ४५०, २० २०-१, २०	गुणवत् ४५० १०२ ।
१०२-१ १०२-११	गुणवत् ४५० ।
१०२ १०२-१ १०२-११	गुणवत् ४५०-१ १०२ १०२ १०२
१०२ १०२ १०२ १०२ १०२	गुणवत् ४५०
१०२ १०२ १०२ १०२ १०२	गुणवत् ४५०
१०२ १०२ १०२ १०२ १०२	गुणवत् ४५०
१०२ १०२ १०२ १०२ १०२	गुणवत् ४५० १०२ १०२

गंधर्व जा २३४, ३०६, ३४८ ।

ग [गा] न्धार दे (उग्र) ३०-९, ३५, १३८, १४३, १६०, १७०, १८३, २२१, २२५, २२८, २३२, २५०, २६०-८, (वीन से) १६० ।

गंधर्विन्मान् प ३४८ ।

गण्डवा जा वो २२५, २४३, २६८ ३००-२, ३१३ ।

गन्धीनगङ्ग प व २६ ६३ ।

गाङ्गीपाट व ४८ ।

गारुड म ११५-६, १५० ।

गारुडक व १५०, १५३, १७४, २५६ ।

गारी प ४१ ५८, १२१, ११२, १६५, ३१८, ३५२ ।

गिरि म १५२ ।

गिरिजार्द्र जा १२८ ।

गिरिजान म व ४६, ११४, ११६, १२२, १२५, १३०, १३८-६, १४५, १७०, १८१, २२५ ।

गिरिजान दामप्रीट रोड १७६ ।

गीगर्गह व ४१-२ ।

गुह्यज्ञ दे ११, २२, २६, ५३, ६५-७, ६९-७२, ९८, १००-८, १६३, २००-१, २१०, २१७, २२०, २२०-८, २४८, २५०, २७४, २८१, ३२४,

३३३; जि ४७, ३३५ ।

गुजराती वो ६९, ७११, ७१२, २३८, २४८, २६५-७१, ३२७, ३२६, १११, ११३-५, ३४४; आ ३४१ ।

गुह्यज्ञाना जि ३३५ ।

गुह्यार्द्र जि २०२ ।

गुह्यार्द्र म २४६ ।

गुली म ८६, ३५२ ।

गुल व १२० ।

गुलकल व १०५ ।

गुल जा ६७, ६६, ७१, ७८, ८१ २०५, २२८, १०९ ।

गुलकलपुर जि ४७ ।

गुलकली वो २६६-७०, ३१२, ३१९-७ ।

गुलका दामप्रीता व ११५ ।

गुह्येन जा २६४ ।

गुह्येन व १४१ ।

गुह्येन जा ७१ ।

गुह्येन व १४३ ।

गुह्येन व ८१, २१४ ।

गुह्येन जा २०५ ।

गुह्ये जि १४६-५० ।

गुह्ये" = गुली ।

गुलर जा २४२; गुली वो २१०, २४६ ।

मैत्रिक को २४२ ।

मोक्ष ब ८४, २१३ ।

मोक्षक ब ८७ ।

मोक्षरा ब ४० ।

मोड जा ७६, २३६-४१ ।

मोडवाना दे २१३ ।

मोडो को २४०-१ ।

मोहावरीन ७४-७, ८४-८,

९३, ६६, १०१ २, २०१
२६० ।

मोनदे ब ७४, १०० ।

मोमती न ९४, १०६ १२६ ।

मोमन जो २८, ४० ४४ ४८

४०; न १२६; १८२, ३२० ।

मोर न १३४ ।

मोरखपुर जि ब ३२, १५४ २०८
३२५ ।

मोरखा ब १५४; जा २३४-६,

२६४, २७३-४ ।

मोरखाली = लसकुवा

मोती मुहम्मद या शहाबुल न

४३, ७० २७४ ।

मोतबुल्ल ब जि २४

९१-२ २७ २८ ३०

मोतिन्दसिंह लफ १७४

मोतबुल्ल ब जि २४ २७ २८ ३०

३ २ ४ ८

मोडविन ओम्पिन प = चगेरी
मोती = पंजकोरा ।

मोतीगंगा न. ११५, १५२-३

मोतीशंकर प १०९, ११२
१५५-६ ।

"मयगर" दे ११८ ।

मयाज्वे ब १५३, १७४ ।

मन्थ साहेब ३३०, ३३७ ।

मोड दंक रोड = सड़के आज़म
पामनारीविषय जि ३१८ ।

मालन्द. ब ४११

मालवाड़ा जि २१२, २६५ ।

मालियत ब ५५ ६० ।

मालव न १५० १९९, २०२-३,
२२१, २३३ ।

मालभा न ८७, १०४ ।

मालरा न ४१, ११२, ११४-५,
११६ १५२-३, ३४० ।

मालवा जि ६३, २१३ ।

मुन्द पामोर १२५ ।

मालव न १३१-२, १३७ १८१ ।

मालवा की सोमपुर दे १४६-५०,

१५८ १५७ २५६ ३१८

३२३

मालवविन म ३०५ ।

माल न ३००

माल २४ २ २२५

छोटा निरुपन = बोबीर ।

छोटा नागपुर = साहूनाड ।

जगाधरी = ४६ ।

जहाङ्गर = ११३ ११४-६
११६ १४८-६ १४९-३,
= १४८-६, हि १३६,
१४६ ।

जसोरी = ३६ ।

जद वा जह = जद ।

जमनाली मज ३३३ ।

जदवी छात्र ३३३ ।

जवन्पुर = ३३८, ६६, ७०६ ।

जमना = २५-६, २८-६ ३६,
४०, ४६, ५१-३ ५५-३,
६६, ७६, ११२, ११६
१५०-३ २०२ ३, २०५ ६
२३५-१ २५६ २६० ३४४ ।

जमोरी = १३३, १५० ।

जमोरीपुर = ६६६ ।

जमोरीपुर = ५८ ।

जमोरीपुर = २३३ ।

जमो = ४० १३६ ।

जमोरी = ३३ १३३ १३४ २३३

२६६ २६६ २६६ ३०८ ।

जमोरी = ६०

जमोरी = ३३ १३३

जमोरी = ३३३ १३३ १३३

जमोरी = (वामीर के १) =
मीरा, (वामीर के ३)

२२६, ३१३ ।

जमोरी, जमोरी = १०, ६१-२,
१५६, १६०, २४२५
२५६ ।

जमोरी = ३६, ५१, हि १४६,
२३३ ।

जमोरीपुर = ३५० ।

जमोरीपुर = १२८ ।

जमोरीपुर = ५६, ७६ ।

जमोरीपुर = ७६, १४३ ।

जमोरी = १० ४३-४, ५६ २२२
२३६-८० ।

जमोरी = ११५, १५१, १६३ ।

जमोरी =, जमोरी = ३, ४६,
१६३ ।

जमोरी = ७० ।

जमोरी = ८३, १०३ ।

जमोरी = १०० ।

जमोरी = २३, २५४ ५ ।

जमोरी = २०० ।

जमोरी = २३३ ।

जमोरी = ३३

जमोरी = १३० २३३ ।

जमोरी = १३३

जमोरी = १३३

जेवळ व १३१, १७५ । जेवळी
= इकागिमी ।

जेवळम न जि व ४३ ४६-७,
४६, ५०, ११३, १२२,
१३८-६ २६८६ ।

जैन धर्म २५० ।

जैसलमेर जि २१० ।

जोगबानी व ४२ ।

जोगीला जो ११३, १२१-३, १३०,
१४०, १४२ १४५, १७३ ।

जोरकुल स १२५ ३०४ ।

जोगीमठ ती ११६, १५१ ।

जौनसार या जौनसार-बाघर जि
१११, १५१, २३२, २३४
२३८ २४६, २५१ ।

ज्वालामुखी ती १४६ ।

झंग व ४०, ४४; जि ३३५ ।

झांगी व जि २११ ।

झलवान जि २२२ ।

झाडखंड दे २६, ५८ ६५-६
६८, ८०-२, १६४, २०१,
२०८-६ २११, २४१
२५३ २७६ ।

झोसा व ७५ ७७ जि ३२५ ।

झाव न जि ६१ १०६ १३५

१८० २०० २०५ २०६

२०७

जेनजिनधला व ११६ ।

टखर दे ३३७ । टखरी वो २२०,
३३७ ।

टांक व १८२ ।

टोम न १६२ ।

टोबा न १८२ ।

टोबा व १२६, १३५, ३२० ।

टोव न (विष्णु का) ६३-५ ७७;
(हिमालय को) १४६, १५१ ।

ढाता जि ७५ ।

ढागाई व १५० ।

ढव=भोलदेव ।

ढफरिन, लाहं, ६० ।

ढोंग जि ८३ ।

ढालनयाला व (देहरादून का
मुहस्ता) १११ ।

डिमूगद = दिमूगद ।

डिलाही वो २१६ २२१ ।

डुगमुल = भूदान ।

डुगर जि १३८, १४५-६, २३३,
३१२ ।

डेन वो २४३ ।

डेग डम्माइलवां व जि ३५, ४०,
४५ ४८, १८२ २२०-१

२२३-५ २८२ ।

डा गार्जीवां व जि ३५ ८०

२२३

राजाजी जि ३५, ३७ ३८, ३९ । नातिह आ २५४-७, २०१,
देवरा क ३३४ । ३१५ ।

राजाजी आ ३५३ ।

राजाजी जि ३५३

राजाजी क ३३५, जि ३५ ।

राजाजी क जि ३५३ ३३५ ।

राजाजी क ३३५

राजाजी जि ३५३ ३३५ ।

राजाजी क ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५ ३३५

३३५

राजाजी क ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५

राजाजी क ३३५

राजाजी क ३३५

राजाजी क ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५

राजाजी क ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५ ३३५

३३५

राजाजी क ३३५ ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५ ३३५

३३५ ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५ ३३५

३३५ ३३५ ३३५

३३५ ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५ ३३५

३३५ ३३५ ३३५

३३५ ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५ ३३५

३३५

राजाजी क ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५ ३३५

राजाजी क ३३५ ३३५ ३३५

३३५ ३३५ ३३५

मैत्रेयप्राज्ञी व ५७ ।	१२७, ३१०, ३१५ ।
मेमुगु बो मा २१५, २२२ २३२-	शोक आमुक व १५० ।
५०, २४२, २५८ २६६-७१,	शोक श्री सम्भोग वा १७० ।
३३०-१ ३४०, ३४८ ।	शोकशा प्रो १५५ ।
मो। मा ८८५०५ ।	शेन रे २४३ । श्रीमद्भुतो मा बो
मायक व रि १५८ । मोसायक व	२४३ ।
१५८ ।	शस्त्रिय, दक्षिण्य आरम दक्षिण-
मायवेदाल मो १४३ ।	सम्भ वा दक्षिणागम रे १६
मायी वा माही ८८५०५ ।	२५-६, २७, ३८, ४२, ४६
मृगवीर वा २४०-३ ३२५ ।	५ ५१ ६०, ६८, ७०-१,
मृगाल व १४३ २३३, ३१२ ।	७३, ७५-८० ८२-१०३,
मृगुति व १ ७७ ७६ ७०६ ।	१३३, १८५, १८६
मृगवृक्ष व ८१ ।	१८८, २०१, २१३-१७,
मृगावृक्ष व १४७ ।	२२२ २३७ २४०, ३४६ १०१
मृगवीर व १५७	दक्षिण्य कषाहा रि २१५ ।
मृगवृक्ष व ११३, १५८ ।	दक्षिण्य व व मायव १० ।
मृगवृक्षवृक्ष व १५४-७ १७० ।	दक्षिण्य मृगुगु ८८ मायवीर वृक्षमायव
माय क म १ ।	दक्षिण्य व ३० ।
मायक रि २५३ ।	दक्षिण्यवृक्ष ७८ ।
माय रि २१ ८८ ३३ ३६-७	दक्षिण्य व १३१ ।
६१ ६३ ७० १८३ २१०-	दक्षिण्य वा १५८ ।
१ ३३३ ।	दक्षिण्य व ८५, २१३
माय १४ ३० ४६ ६६ ८६० वा	दक्षिण्य मा १७३ १३३ १३३
८८०	८३० ८४३ ८४७ ८४८,
माय ८८ वा ८८	८५० ८६० ८६० ८६३ ।
माय ८८ व ११३	दक्षिण्य मायव ८३ १३० ३,
दक्षिण्य माय व ८८५०५ माय व	१३० १३८ ४१ १३३,

१६८, २३१-२, २४६, २६२.
३४७ ।

दरदपुति = गुरेह ।

दरदघोषि को २४५-६

दादी या दरदलानीय को २४६
२५०-१, ३००, ३३५ ।

दाई व ४१ ।

दायाँ व ४८, ६१ ।

दामनूज जि २११ ।

दामपुर व ६५, ७५, ७८ ।

दामानं जि, दामानां न (भारत में)
= दसान; (हिन्दुधर्मी में) =
मौह का भाग ।

दामु आ ३१२-३ ।

दामिनाथ आ १०८ ।

दामिनाथा नारदभूषि ३५० ।

दामोदर को २६३ ।

दांतुन = दन्तपुर ।

दामोदर न २६ ६६ ।

दारहोत को १२५

दारमा या दाम, व ११२, १५३

२५३ को १५३ दारमा

को जि १५३

दारदह या दार १५३, १८३

व १३०, २०३, २६८

दार या दारदह या दारदह
१८, १७८

दाक्षिणिक व १५७, ३१७, ३४२ ।

दामिना को २६३-४ ।

दावे = दुगर ।

दावे जि को २६५ ।

दासोर = दमपुर ।

दिहरीग न २६५ ।

दिनी न ३२१ ।

दिमगढ़ व ४१, १६४, २८२ ।

दिल्ली या देहली व ३२, ३६, ३८,
४०, ४२, ४४-५, ५५, ६१,
६९-७१, ७३, ६८, १७३,
२४८ ३१०, ३२६, ३५४ ।

दिहल या दिहोंग न १२०, १५८,
१६८, २६०, ३४२ ।

दिहिग न ५६ ।

दीवाघाट व १९४ ।

दीनदुर भोजन आ १७२ ।

दीर जि १३७-८ ।

दुग्धघाट = दुग्धपुर ।

दुग्धपुर व १८२ ।

दुग्धपुर को १४१ ।

दुग्धवा व ११०, १५४

दुग्धवाल में ७२ ।

दुग्धवा की ७६ ।

दुग्धवा न ८५ ।

दुग्धवा न १५५-६

दुग्धवा व १५१, ३ ।

नामध व ७६, ७८ ।

नामाद् जि २१० । नोमाद्दी वो
२१० ।

नीया न १२६, १६६-१७० ।

नीरा न ८६ ।

नील न ३० ।

नीलगिरि प ८७ ८६ ६०, २१४,
२७६ ।

नीलम' जोहू = म्बेनम् जोहू ।

नुमान ओ १७४ ।

नुनकुन प ११३ १४० ।

नुवरा न ११६७ ।

नेगावटम् = नागवट्टणम् ।

नेवाल्दे२३ ४४ ११०-२, १३०

१४६ १५२-७ १७२

१७४-६, १६७, २३२

२३५-८ २४०-६, २६३-४,

२६७, २७३, ३०६; जि

१५४५, २००, २३५-६

३०३, ३११ ।

नेवाली जा १६६, २३७, वो

२४६-५० २६७, ३०३ ।

नेरू व २१८ ।

नेरू व ६३, २१६, जि २१४ ।

नेवार जा २६४ । नेवाराद्विर्गोव

वो जा २६४ । नेवारी वो

२६४, २६७ २७१ ।

नेनीतान जि ११० ।

नेपोलियन ता १६२ ।

नीगांव व (प्र) ७७, जि (प)
२६५ ।

नीजेता व ४१ ।

न्यक स ११७ ।

न्यक न १५७ ।

न्यू गिनी द्वी २५५ ।

न्येनम जोहू = कुनी ।

नयप मा दे ४७, २२४-५ २२७-६ ।

नयली जि १३८, १४१, २३२-३ ।

नयनाय = नयथ ।

नयूवाली व्यापारपट्टि २२५ ।

नयथो = नयतो ।

नयमान प १३८ ।

नयान = भरिमदनपुर ।

नयू जि २५६ ।

नयोरु स ११६-७ ।

नयमको व ६५, २५६ ।

नयवट्टमल्ल व ६० ।

नयिजन खम्ह १६६ २१७-८,

२३७, ३४६ ।

नयिजम या नयिजी समुद्र ५६,

६८ ७४, ८३, १६८, १८८ ।

नयिजी पाट व ७४, ८३-४,

८६-७, २१३, ३२१ ।

नयव गण जा ३११ ।

पञ्चाङ्ग हे ४६. २०३-४. २०७;

(८) २०२ २०४; (९) २०४

२१=।

पञ्चाङ्गपारा=पौर पञ्चाङ्ग ।

पञ्चदशोत्तर १२८, १३७-८ १५५ ।

पञ्चदशोत्तर न १३१-२. १३७=

१८१. ३१६ ।

पञ्चाङ्ग १२५ ६ ।

पञ्चाङ्ग हे १०-१. २३ २६. ३१-

२. ३४. ३७ ४०. ४२-४

४७-८, ४०-७ ६१. ६६.

७६ १३४ १४३-४. १६२-

३. १८५. २०० २०२ २१०.

२१५. २१७. २१६-२२.

२२३-४. २०८-६. २३२-३.

२३६-८ २४८. २४२. २६६

२७५. २७६-८ २८८.

३२४. ३२७ ३३०. ३३२

३३४. ३३६-८ ३४० ।

पञ्चाङ्गोत्तरा ४३. २२१. २४८.

२७५ ६. ३३६ ३४१; ४०

२०० २१६-८० २२२.

२३० ३ २३८ २४५ २४८

२६६ ३०७-८ ३३० ३३४

३ ३३७=

पञ्चाङ्ग ६ १० ४० ४१ ४२

४३ ४४

पञ्चदशोत्तरा २०२ ।

पञ्चाङ्ग जा ३० ४७. ५४. ७१.

७५ १३४. १८२. १८५.

२२२. २२५ २२७-३० ।

पञ्चाङ्गोत्तरा ४४२ ।

पञ्चाङ्गोत्तरा १६५. २६६. ३४२ ।

पञ्चाङ्गोत्तरा = पञ्चाङ्ग ।

पञ्चाङ्ग ४१ ।

पञ्चाङ्ग जा ६३. ७७ ।

पञ्चाङ्गोत्तरा १०६ ३४२ ।

पञ्चाङ्गोत्तरा २५५ ।

पञ्चाङ्गोत्तरा जा २५४ ।

पञ्चाङ्गोत्तरा ११३ १४= ।

पञ्चाङ्गोत्तरा २१६ ।

पञ्चाङ्गोत्तरा २०९ ।

पञ्चाङ्गोत्तरा ३१३ ।

पञ्चाङ्गोत्तरा = पञ्चाङ्ग ।

पञ्चाङ्ग ११५ १४८-६ ।

पञ्चाङ्गोत्तरा = पञ्चाङ्गोत्तरा ।

पञ्चाङ्गोत्तरा = पञ्चाङ्ग ।

पञ्चाङ्गोत्तरा = पञ्चाङ्ग ।

पञ्चाङ्गोत्तरा २२१-२३७ ३१० ।

पञ्चाङ्गोत्तरा २२१-२३७ ३१० ।

पञ्चाङ्गोत्तरा २२३. ३४६ ।

पञ्चाङ्गोत्तरा ४४०-१ ।

पञ्चाङ्गोत्तरा २०५ ।

पञ्चाङ्गोत्तरा २०८-८ ।

नामस व ५६, ५८ ।

नामाह जि २१० । नामाही वो
२१० ।

नावा न २२६, २६६-१७० ।

नीरा न २६

नाल न ३० ।

नालांगे व ८७ ८६ ६०, २१४,
२७६ ।

नालम जं ह म्हेमम् जं ह ।

नामाव १ १७१ ।

ननकन व ११३ १५० ।

नुवरा न ११६ ७ ।

नगावहम् = नागवहणम् ।

नवान ह ० ४ ११०-२, १३०,

१४६ १५० ७ १७२,

१७१-१ १६७ २३२

२३५ ८ २५८-६ २६३-४,

२६७, २७३ ३०६, जि

१५४५ २७० २३५-६

३०३ ३११ ।

नगाग ना १६६ २३७, वा

२६६ ५० २६७, ३०३ ।

नहं २ २०८ ।

नगा १ ५६ २०८ १ १०५

१ १ १ १०५ १ १०५ १ १०५

१ १ १ १०५ १ १०५ १ १०५

१०५ १०५ १०५

नाम

नाम

नाम

नाम

नाम

नाम

नाम

नाम

नाम

नाम

नाम

नाम

नाम

नाम

नाम

नाम

नाम

नाम

पलासिनी न ३१८-९, ३२२ ।

पलीग जा बो २५५-६ ।

पल्लव जा १०३-४, १०८, २७३ ।

पल्लवी व ६०, ३५२ ।

पल्लव न ३२२ ।

पवनगद्ग व १०६ ।

पञ्चादश वा पञ्चिम दश = पञ्चिम
लक्ष ।

पञ्चम = पञ्चम ।

पञ्चवर्णी = पञ्चवर्णी ।

पञ्चा बो ७७०, २२२-४ ७२६,
२२८-६ २३७, २६८
३३८-६ ।

पञ्चर्षी बो ७५७ ।

पदादी बो २३२-३, ७३८ ७४८-
६ ७५८-६, २६८, ३०७, ३४६

पद्म वा १८५ ।

पञ्चाक्षरी वा पञ्चाक्षरमन्त्रमन्त्र

पञ्चम ३५६ ।

पञ्चमिषुव न पञ्चम ।

पञ्चमिषुवा १९० १९१ २२२ ।

पञ्चमिषुव जा ५९ ३ ३१७

पञ्चमिषुव व १९० ।

पञ्चमिषुव व १९० १९१ २२२

पञ्चमिषुववा न ६०

पञ्चमिषुव ३००

पञ्चमिषुव व १९०, १९१

पञ्चमिषुव दे १९, ४९, १२२-७, ११०,

११८, १००, १०५-९, २२९,

२५१, ३०१-४, छंदा ११५;

बद्धा १२५, पञ्चमिषुव-वर्णी

१२५, १३०, ३२० ।

पञ्चमिषुव व १२५, १८१ ।

पञ्चम दे ३३६ ।

पञ्चमिषुव व १६, ६५ ।

पञ्चमिषुव वा पञ्चमिषुव जा ३०, ११५,

१८५, १९०, २०१, ३३६;

पञ्चमिषुव बो २४२, २४९; वा

मिषुव (पञ्चमिषुव-वर्णी, पञ्चमिषुव

मिषुव) बो २४९, २५३; पञ्चमिषुव

२४० ।

पञ्चमिषुव व १३-४, ९०-१, १६६,

२२१, २४८ ।

पञ्चमिषुव दे ३३६ ।

पञ्चमिषुव न ६३ ।

पञ्चमिषुववा जा २२५, २३०, २३२,

२८३ ३३७ ।

पञ्चमिषुव व १८ ६० ।

पञ्चमिषुव व मिषुव १०० ।

पञ्चमिषुव न २० ।

११८ बो २४२ २४९, २६०

२८० ३ ३०१, ३३१ ३३६

३२० ।

पञ्चमिषुव न ३००

हउ, १०३; (६) ह० ।	प्राची या प्राच्य देश = पूरव ।
पैदाश्रोतल जो ११३, १२८, १८२ ।	घोम व १६७ ।
पैशाधी बो २४६ ।	कृतद्वगद् व ५५ ।
पोडोवार जि २३३ ।	कृतद्वपुर-सीकरी व ६५ ।
पोनयुल = लिखत ।	कृतमाना दे १२७, १७५ ।
'पो-सा' जि २२८ ।	कृतारू न १२८, १३४ ।
'पोरस' हा ३६, ५० ।	क-क-न' व जि २२६ ।
पौरव हा ३१२ ।	कृतिरुद्ध व ३८, ४०, ८२ ।
प्यूदाना जि १५३ ।	'कानकी' दे १६४ ।
प्रताप हा ७३ ।	कालसी बो ६५, १३५, २२५-६,
प्रतिष्ठान = पीठन ।	२४७, ३३१-२, ३३८-६ ।
प्रतिहार जा ७१ ।	कालिस दे ८, १०, ४३, १३४,
प्रद्योत, कन्द, हा ७४ ।	१६२, १८२, १८६, १६३,
प्रभाकरवर्धन हा ६६ ।	२२४-५, २५२, ३३६ ।
प्रवाग या प्रवागराज व ती ३६,	कालिम की खाई ३०, १८८-६०,
४१, ५४-६, ६०, ७६-७,	२८१ ।
६६, ११६, १६९, २०३-५	कृद्विधान भा २३, १७६ ।
२०७, ३५०, जि २०४,	किमीर व ४६ ।
२०७, ती (कर्मर में) ।	कीरीजकोही = बर्जिमान ।
१४१ ।	कीरीजपुर व ३८-६, ४४, ५१,
प्रशाम्म महासागर १६१, २५४-५,	५६, ६० ।
२७८ ।	कुरु व १५५-६ ।
प्राकृत बो १८५, १६०, २३६,	कुलद्विर्घो निवासते २०२ ।
२५०, २६७ ।	कृकन जा २६१ ।
प्राच्योक्ति दे १६६, १७०, १७८,	कृमावाद व १३०, १३२, १७५ ।
३१०-१, ३१६ ।	कूटं सन्धेयन = धनोत्तम ।
प्राग व ३६, १३७ ।	कृक जा ३१५ ।

वरमी बी २१२, २६५, २७०-१.

३२६; जा २५८ २६६।

वराह व १५४।

वराह दे ३१, ५४, ५८, ८१,

६२, ६६, १०२ २१३, २४०,

२४२, ३४७।

वरुधा जा २६१।

वरेली व ४२।

वरोलील जो १२५, १३०।

वल्लभ व १३३, दे ४६ १८७

१३२-३, १८६, १८१, २००,

२२४, २२६, २७२, ३०१

३०३; व दे १३३ ३१२-३।

वलिवा जि २०८।

वलोच जा १३४-५, २२२-३।

वलोचिराम दे २४, ४६ ६१

१३४-५, १८२ २३७-८

२२१-४।

वलोची बी २२२-३ २४२।

वलोचारी जि २१५ ३४२।

वलोचर व १४६।

वजगोत्र न १३७।

वजहर जि १५८।

वमई व ७५, ९८।

वमर जि ६२, ६६, २०१ २०३

२११, २१३-४, ३१८।

वमरी जि २०८।

वदमनी जा १०३-४।

वहादुरशाह रा ७६, ७८।

वहावलपुर जि २१०।

वाहिगिरि प ११०, १११।

वागद जि ११०।

वागममी न १५४-५।

वागलकोट व ८७।

वागलाम या वागुल्ल जि ८४।

वागेरवर व १५२।

वांगर जि ३४ ३०, ४४, ४१,

१०१, २२१।

वांगर बी २०२-४, २४८।

वाजगाह व १३३।

वागौर जि २३७-८, २२५।

वाका जा ११२ २१५-६; बी

२६५।

वागहाल जो १४२-३।

वाकर रा ४४ ७६ १३४।

वागुल्ल व दे १८९।

वागुमर जो १४१, १००।

वाग्री जा १३४।

वागिदा न व १२३ १३० ३ १८१

३१३।

वाग जि ३४ ३० ४४ २१,

३३०।

वागमुला जा १४१-३।

वागलवा जो ११३, १४०।

'बोझो' = बाधा ।

बोझ बुझ = बोझ बुझ ।

बोझिबो झो २५५ ।

बोझाम जो २८, ४८, ५०,

११३, १३५, १८२-३,

२००, २२४ २२७, न

२१८, न २२२-४ ।

बोझो जि १२२-३, १२६,

१३६, १७२, २६२,

३०० ३०५ ।

बोड जा धर्म १२४-४, १७१

१८६ १८१, १८४, १६६,

२६० २६४, ३५० ।

बोधाव न ३३, ६६ ।

बोधाव न ७०, ४३, ४७, १०३,

११० ११३, १४६-८, १६३,

३१०, ३१२, ३४१ ।

बोधावा को २००-५, २५८

३३४ ३५२ ।

बोधाव न २०९, ४२, ५८,

१०६, ११४-२१, १५२,

१५४-४ १५७-८, १६८

२१२, २६१, २६३ ३०६ ।

बोधावेन २०३-५ ।

बोधाव जि २०३-४ ।

बोधाव ३३३ ६ ।

बोधाव न १८४ २०० ३ ०-४०

२४२, २७६, को २२२,

२३६, २६८ ।

बोधाव न २७६, ३३२ ।

बोधाव न २५ ।

बोधाव न ५१ मित्रि ताम्र ६२,

७२, ७३ ६६, १३४५,

१६३, १७४, १६२-५, २१० ।

बोधाव न ४८ ।

बोधाव न ३६, ४०, ४२, ४५,

५१, ६१ ।

बोधाव न २१५ ।

बोधाव न ४७५ न ४७५ न ४७५

जि १४६-७, २३२ ।

बोधाव न २३२ ।

बोधाव न ४७ ।

बोधाव न २३ ।

बोधाव न ७२, २६

७३-५ १०८, १८६, १६३,

२८१ ।

बोधाव न ४८ ।

बोधाव न ३२० ।

बोधाव न ३३२ ।

बोधाव न ४५, ४५, ६७

८१, १७० १८३, १६६,

२००

बोधाव न ११३ १४७ ।

बोधाव न ११५ ११६, ११७ ।

[illegible]



३०, ३३ ३ ३०० ३३०,

३३३ ।

आमरिच श्री ३३ ३३

आमरिच श्री ३३ ३३

आमरिच श्री ३३, ३३ (विशेष-वर्ग-३)

आमरिच ।

आमरिच श्री ३३ ३३ ३३-३, ३३,

३३ ३३ ३३, ३३ ३, ३३

३३० ३३३ ३३, ३३३, ३३३

३३३ ३३३ ३३३ ३३३,

३३३

आमरिच श्री ३३३ ३३

आमरिच श्री ३३३ ३३३ ३३३

३३ ३३३ ३३३ ३३३

३३३ ।

आमरिच श्री ३३, ३३३-३

आमरिच श्री ३३३

आमरिच श्री ३३३ ३३३, ३३३ ३

आमरिच श्री ३३३ ३३३ ३३३ ।

आमरिच श्री ३३ ३३३ ३३३

३३३

आमरिच श्री ३३३ ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३

आमरिच श्री ३३३ ३३३, ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३

आमरिच श्री ३३ ३३३ ३३३

आमरिच श्री ३३ ३३३

आमरिच श्री ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३, ३३३ ३३३

आमरिच श्री ३३३, ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३, ३३३ ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३, ३३३ ३३३

३३३ ।

आमरिच श्री ३३३, ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३ ३३३ ३३३, ३३३

३३३, ३३३ ३३३ ३३३

३३३ ३३३, ३३३, ३३३ ३३३

आमरिच श्री ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३ ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३ ।

आमरिच श्री, आमरिच श्री ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३, ३३३ ३३३, ३३३

३३३, ३३३ ३३३ । आमरिच श्री

३३३ ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३ ३३३ ।

आमरिच श्री ३३३

आमरिच श्री ३३३

आमरिच श्री ३३३

गोपद व त्रि २२१, ३४० ।

गोम दे १६२, १६० । गोमन आ
१०; गो ३२६ १४८ ।

गोमि या गोदक व ३० ४३ ।

गोमन त्रि १३० ।

गोम आ ३१५ ।

गोद दे २३० ३२५ । गोदोला आ
२३० ।

गोदलक त्रि २०५ ।

गोमो दे १६० ।

गोमदिवि ग्री ५१० ।

गोमदिव व ४३ ।

गोमनद व ३९ ४० ।

गोमोमगुत त्रि २६५ ।

गोमो ग्री ०० ६० १८६, ३०६ ।

गोमनिवा न ८८ ९३ ।

गोमनव १०५ १४५-६, १५०, १६२ ।

गोमो गोमन ओ ११३ ।

गोमो गो ३३२, ३३६ ।

गोमन व ११४-९, ११६, १२२,

१३३, १४३ ५० १५२ १५४-

५, त्रि ११५ १४० १८६,

१३२, १७१, २३२, २६२-

३, ३०५ ३०८ । गोमो

ओ २६० ।

गोमोमी ओ २१० ।

गोमोमान या गोमोम त्रि १३३,

१८१, ३४१ ।

गोमोमि या गोमो १५३ ।

गोमोमि ओ २७० ।

गोमोमिनि या १७१-३, २३१,

२३४-५, २६६, ३००, ३१६ ।

गोमोमि आ १९१ २ ।

'गोमोम' या 'गोमोम' व गोमोमि ।

गोमोमिनि या गोमोमिनि ।

गोमोमिनि ओ २४२, ३१५ ।

गोमोमिनि व ३४३ ।

गोमोमिनि १६५, १६७ ।

गोमोमिनि १८८-६० ।

गोमोमिनि २२२ । गोमोमिनि व गोमोमिनि

१३४, १३६ २१३ २२१-२ ।

गोमोमिनि ओ २२२ ।

गोमोमिनि त्रि १४३-८, २६४ ।

गोमोमिनि ओ २६४ ३०८ ।

गोमोमिनि व ३६, ४०, ४० ४१,

४३, ४१, ४४, ४७, १६१ ८६

३३६, त्रि ३३४ ।

गोमोमिनि त्रि २१४ ।

गोमोमिनि आ २३६ ।

गोमोमिनि ओ १५३ ।

मंकरवर्मा का २३५-६ ।	शिवदे रा ६० ।
मकर का २५७-८ २७२. २७६. ३०७ ।	शिवकी जो ११३. १५०. १७२ ।
मकी न ८८. ६२. २०१. ३०७ ।	शिवरा जो १३२ ।
मपी हो का २६३ ।	शिवला ब ४२. ११२. १५१ ।
मत्तनती न ३१२ ।	शिव = शिवि जा ।
माकलदीन ३११ ।	शिवनाथ न ८८ ।
माम का ६ १६७. २६०-६ ।	शिवपुरी प १५४ ।
मानसलिन का १७२ ।	शिवसमुद्रम ती ८६. ६७ ।
माबर का २१२. २५३-८. २६३ २७२. २७६-८२. ३०६-७ ।	शिवसागर हि ३६३ ।
माम दे ८२. जा = माम ।	शिवानी रा १०. ८४. ८९. ६६. १०३-७ १७४ ।
मारदा न = काजी (कुमाँ की) : दे = करनीर; ती १५१-२; हो २६६-७०. ३३६-८ ।	शिवानक प ११०-१. १४६. १६१ ।
मारदी -- मारदादीर्घ ।	शिवि जा दे २१८. २२७ ।
माहद्वी रा ४८ ७५. ७६ ।	शिविपुर = शोरकोट ।
माहपुर हि ४७ २१६ । माहपुरी हो २२० ।	मीनार प १२६. १३५. २२२-३ ।
माहाबाद हि २०८ ।	मुक्तिमयी न ६३ ११८ ।
मिमीक का मिमीक न ११६-७. १०२-३. १३६. १७५ ३०४	मुक्तिमान् प ६०-६. २६७. ३१८-२२ ३४८ ।
मिमीकोन ब ८८ ६३	मुंग का ७५ ।
मिमन हि ३३०	मुन मे ५८ ।
मिम न १७३	मुनुटि = सवलक ।
मिमन न १२३ १२७	मुन मीन जो ११३. १२० १८० ।
मिमन न १२३ १२७	मुमन हि २०२. ३०४. २०७ ।
मिमन न १२३ १२७	मुमन = मोमरा ।
मिमन न १२३ १२७	मुमनकोट ब १५५ ।
मिमन न १२३ १२७	मुन दे १६६ ।
मिमन न १२३ १२७	मुमन न का मुमनकोट ब १५५ ।

४० ४२, ४० ६२, ४१, ४६,

६२, १२८ ।

मोरमणव व २०, ३५३ ।

मोपाकनव व ६२ ।

मोमुपाक मा ५० ।

मोल = मोव ।

मोरकोट व २३, ११ ३६८ ।

मोरावद म २३५ ।

मोपापु व २०५, मि २३५ ।

मोमवा माकुल की २०२, २५८ ।

मोमव पाव व २५८, ३५३ ।

मोमवा व (३) २५०, २३८, २५०

(१) २५३ ।

मोवा मा २३४ ।

मोव व = मोमव ।

मोवी म २३३ ४६३ ।

मव व मा २३४ ।

मवला व ५८ २३३-८ ।

मवला व ३३ ५० ५८

६३ ३५० ।

मवला व २३३ ३२० ।

मवला = मवला ।

मवला ३३ ।

मवला व २३३ २३, २३३, ३३, ५०-६३ २३३ २३३

२३३ २३३ २३३ २३३

८, २५०, २५३-३ २५३ २५३

२३३-४, २३३, २५४, ३५३ ।

मवला व ४३, २५८ ।

मवलोमी म २३३-६ ।

मवला व मा मवला व मा २३३,

२५३, २५३ ।

मवलावलावला मि २३३, २३३,

२५३, ३५० ।

मवलावी मा मवलावी मा २५३ ।

मवलोमीमि २५३, २५४, २३३ ।

मवलावला मि २५४ ।

मवलावला व ८५ ।

मवला व व २३३-३, २५३, ३५३ ।

मवलावला मि २५३ ।

मवलावला मि २५३ ।

मवलावला व मा मवलावला व २३, ३५३-३ ।

मवलावला व २३३ ।

मवलावला व २३३ ।

मवलावला व २३३ ।

मवलावला व २३३ ।

मवलावला व २३३ ।

मवलावला व २३३ ।

मवलावला व २३३ ।

मवलावला व २३३ ।

मवलावला व २३३ ।

मवलावला व २३३ २३३ २५३ ।

मवलावला व २३३ ।

मवलावला व २३३ ३३ २३३, ३५३ ।

१८, १०६-१०, ११३, निविम्मान या निधी त्रि ४९, ११४, ११५-६, १२२-३, १२६, १२६, १३५, १३७-४०, १४७, १४७-४०, १४८, १५१ १७३, १८२ १६०, २१८, २२०-१ २३२-३, २६०, २६८-६, ३०३-४, ३१६-२०, (धन की काला) ३१३, ३४७, (गणमान्यता की) ३४, ३८ २३, ३३-४ ३४, ४२-३, ४१, ४१ ६१, ६६-७७ १०८ १३४ १८३-४, १८३, २०७-१, २१०, २१७-८ २२०-३ २३३, २४० २४३ २४८ ३३०, ३३२-४, ३४० ।	२२३ । निगमा व १६३ । निगादी हिंद की की २१०-१ । निगीचवार = धीच'र वार । निगीदी त्रि ४५ । निगहर त्रि १०४, ११६ । निगिरुह ग ९, १६५ । निगि = निगि । निहुर व २१६ । निहुरुम त्रि २१३ । निहुरु ११-४, ११, १११, ११०, ११०, ११० १११, ११० १११, ११२, ११४, ११४, ११४, ११४ । निहुरी का १११, ११४-१, ११४ २००-१, १००, ११०-१०, ११२ । नीमा का नीले व ११०, १११-४, ११६, १०५, १०६, १०७-४ । नीर व १६३ । नीरिग = नीर । नीरिग त्रि ११८, ११७, ११४ । नीरुकी व ११८ ११९ । नीरु त्रि १०१ ११८ १११-४ । नीरु का () व १११-४ । नीरु व ११० ११०
-------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------	-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------

मुनवार को ३०६ ।	मेनुबन्ध दो ६१ ।
मुनाम रा ३११ ।	मेनुमन्त = हेनमन्त ।
मुन्नतिरी न ११४ १५८ ।	मेन का राज्य ८२, १०८, २१६ ।
मुवाधू व २३३ ।	मेनादिन्दु रा ३११ ।
मुनावा दो २५५ ।	मेनांग जा २५५ ।
मुन्द हि (५) ८२, ३१९; (३)	मेनम जि २१४ ।
३११, ३१३, ३१६ ।	मौलान न १३३ ।
मुय्य का २३, १५९ ।	मोह काई = लाल नदी ।
मुसा न ८८, ४१, ५८, १२१,	मोन न २२, ५५, ६३-४, ७७,
१६५, १६८, २१२-३, २६०,	७६, ८०-१ २४१ ।
२६५ ।	मोदारा व ७४-४, ६६ ।
मुसाधू = काटियावाड ।	मोमनाथ नी व ४३, ६६ ७०,
मुगांव न १३१-२ ।	८६, २१५ ।
मुतेमान प (५) १२६, १३५,	मोयंकी जा ७१ ।
२२०, २२२-४, २२६, ३१८-	मोयंकी, मूलाज रा ७१; इमरा
२१; (३) ३२० ।	७०, २७४ ।
मुतेमावरिकोह काहकादा १७४ ।	मोवासिगी प ११०, १४६ ।
मुवांहीव २५५, २५८, । मुवां-	मोहन न ३३ ।
हीपी जा को २५५ ।	मोवीर हे ३७, ६६, २२१ ।
मुवांमि हे १६५, १६७, १८६-८०	'मृच्छ' व ६३ ।
२५८, २६१, ३०७ ।	मृदू व १३६ ।
मुवायोग न २६, ८३, ६३ ।	मूलाज हे १७१, ३१६-८ ।
मुवायु = रक्त ।	मिनी का मनीनी न ११३, ११५,
मुवोमा = मोहव ।	१४८, १५०, १५३ ।
मूराज व ५७ ।	मोन हे ८८, ८९, ९० ।
मूरा व २० २६ ६६ १००	मूराज हे १२१, १६५ १६७ २६०-
८८१ ।	१, २७० ।

म्यामजीनी मा २१०-१ ।	हर्षहरि मा हर्ष मा १६, १७०, वा
म्यामी मा २५८ २६०; मा २७०-	(हरवीति) २१६ ।
१, २२१ ।	हलवी मा २१४ ।
म्यामकीर मा ३२ ४३, ३३३ ।	होर्गो मा ४७ ।
म्याम जि २०२ ।	हमोर ॥ यमोर ।
मोच यम माको वा १७० १७२ ।	हमो मा १५ ।
म्याम मा २५२ ३; मा २७२, ३१५ ।	हामीगुर मा ४२ ।
म्याम मा ३८ १०८, १३३-८,	हाट्ट जि ३०५, ३१५ ।
१५१, १७३ १८२ २०८,	हामने मा ११५, जि १५६ ।
जि २०५, २५६ । म्यामी मा २२५ ।	हामीर् ॥ यमयमर ।
म्याम मा २५३ ।	हाम मा १३२ ।
हाममुमल ॥ यमयम ।	हामी मा २७३ ।
हामयमी मा १८३ ।	हामार मा १३२, ३२०, ३४१ ।
हामा जि ॥ यमा, मा २२४ ।	हामी जि ३४ ।
हामीका मा मा जि ३३, ३६	हिनुका मा १३२ ।
२०८, ३१८ ।	हिमो मा १३२ ।
हामी ॥ यमा ।	हिदु दे ३३ ।
हामी मा २७४ २७८ २८१ ।	हिम ॥ यमयमा ।
हामयमा ॥ यमयमा ।	हिम-हामी मा २७३ ।
हामय मा ११० १५७ २०५ ।	हिमकी [वा] मा २०२, ३१२,
हामय मा ३२० ।	२१, २२३-४, ३३६, ३३७,
हामय मा हामयमा मा १५७	३३८ ३४१, ३४८, ३४९,
२, १५१ ।	३५८, ३७३-८, ३७०, ३७४,
हामे मा ॥ यमयमा ।	४, ३३३ ।
हामे मा जि २०८ २०९ ।	हिमका मा ११४, ११५-८
हामे मा ३१६ ।	१८१ १२१ २४१, ३४८,
हामे मा १०८ १०९ १०९ ।	०२० २३०, १८८ ।
	हिन्दयमा मा हिन्दयमा मा

२४४-५, २७७ ।

हिन्दी बो ११०, ११६, २०२, २२०,

२३२, २३८, २४८, २५७

२५६, २६८-९, २७१,

२२४-८, ३३०-१, ३३३-८,

३४०-६, ३५२; पृथ्वी ८०,

३२५, ३२७, पृथ्वी २०४,

२६८, ३२५-७, ३३४-५ ।

हिन्दी-भाषा २०१-११, २३३-

४, २३७-८, २६६ ।

हिन्दुस्तानी बो ३२४ ।

हिन्दी आ ८, १३६, २०२

२२०, २६१, २७४, २८६-

६०, ३३२, ३३६ ।

हिन्दुस्तानी व १३, १०६, ११८-६

१२३-५, १२७, १२८-३०,

१३७, १७६-७, १८१,

१८३, १८८, २२४, २४७,

२५२, ३०६, ३१६-२०,

३४८ ।

हिन्दुस्तानी व ६१, १८२-३ ।

हिमवन्त या हिमालय व १३, १६,

२५, २७, ३२, ३६-६,

४४-५, ४७, ४८, ५१-२

५८-६, ६७, १०९-१२१,

१२६, १३०, १३६-५८

१६०-३, १६८, १७०

१८६, १८८, २४६, २५१,

२५३-४, २५८, २६०

२६२-४, २६७, २८०, २८६

२०४-६, ३०६, ३४८,

३५०; पृथ्वी १०९-

११, १४५, १७३, ३११;

पृथ्वी १०६-११, १४५

३१०-१; गमन १०६-१०,

११२-५, ११८, १४०-२,

१४५-५१, १४५-७, ३११ ।

हिन्दुस्तानी = १८१ ।

हिन्दुस्तानी ३४ २०२, ३४१ ।

हिन्दुस्तानी २१ ।

हिन्दुस्तानी ११६-७, १२२-३, १२५

१३९, १७५, १७७, २४५;

व २३१, २४५ ।

हिन्दुस्तानी ८७, १०५ ।

हिन्दुस्तानी ११२, १५३ ।

हिन्दुस्तानी ५०, ५७, ७०, ७६, ७८ ।

हिन्दुस्तानी १४६, २३३ ।

हिन्दुस्तानी १८५, २४७, २७२,

२७८, २८०-१, ३०६,

३१५ ।

हिन्दुस्तानी = १८१ ।

हिन्दुस्तानी आ २५६ ।

हिन्दुस्तानी व ३१५ ।

देगाव व १२७८, १३४ १८१,	ईशव व १३३, १८१ ।
०३ १८१, ३०७, मि	ईशव गा २०६ ।
२२५ ५ ।	हो गा वो २१६ ।
इवमद व १२८-६ १३६, १८३	हाताच हा व ३०, २६० ।
३१६-२० ।	होमेवळ व ८६ ।
ईश गा वा २५३ ।	होमुं११ वा १३२ ।
ईशव ॥ नृपव ।	होवव वा १५ ।
ईश, मितां, वा ५०, १७३ ।	होमिवावुव ॥ दुमिवावुव ।
ईशवाव व (अ) ५०, ई (ब)	होम्व व २१४ ।
८६, १०१ २१५ ३२१ ।	

छपाई की भूलचूक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
[१५]	२७	१	१२
[२१]	पंक्ति २ को पंक्ति ५ के रूप में पढ़िये ।		
२४]	२६	पाक	अनु
३	१७	का	की
११	२४	चदेश	वदेश
२२	२३, २४	छुतुद्र	छुतुद्र
२५	१०	देता है उस... जिस	देता है। उस...जिस
२६	२	के—	के ।
२६	११	पूर्ण के विकास	पूर्ण के निकाम
२७	१२	मार्कट्टे	मार्कट्टेय
२८	१०	धिपला	वह धिपला
३०	१५	निश्चित...है, कि	निश्चित...है कि
३०	२१	उच्चारण...। व मराठी	उस उच्चारण '। मराठी
३१	४	तार्थ	तार्थ
३१	११	४,	४७
३१	२०	मधुवनी	मधुवना के
३१	२६ }	दीप विकास	दीप विकास
३२	२५ }		
३२	१४	लम्बाई	लम्बाई—
४७	१७	थे ।	थे ।
६३	५	गवाल	गधील
६३	१३	(दशाशां	(दशाशां
६५	११	तक	तक ।
६५	२३	का मिला	को मिला

पृष्ठ	पंक्ति	भञ्जद	शुद्ध
७७	११	ठावर	तीवर
८७	८	दुगली	दुयली
६३	१७	पैरणार, नदी	पैरणार नदी
१२८	१	का	की
१८३	११	मन	मनी
२२८	८	जाते	जाते
२२६	२०	फ-स-न,	फ-स-न
२७२	२७	'४२५	२४'२५
२७२	२८	५३	'५३
३५१	१	का	को
३५५	१०	मुषारक	मुषारक
३५५	११	किम्ब, नदी ।	म्बि, १८६ ।
३५६	१४	३१३	३१०-३
३५६	२२	१३६	३१०
३५६	२३	३१०	१३६
३५७	१४	२३१	२३०-१
३६०	२५	२१०-१	३१०-१५
३६३	६	४४१	४१

(स)

उन्हीं विरलों ... में हैं । ... भारतीय इतिहास-विज्ञान के सम्बन्ध में न तो हिन्दी में और न अंग्रेजी में ही अभी तक ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित हुआ ... । एक के बाद एक ऐतिहासिक घटना भौगोलिक रज्जु में आकर्षित हो कर आप के सामने से गुजरती चली जायगी । भारत के भूगोल का इतना अच्छा ऐतिहासिक अध्ययन अभी तक ... और किसी ने नहीं किया । ... भूगोल-इतिहास के अध्ययन की एक नवीन दिरा सुझाई है । ... भौगोलिक परिस्थितियों के ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रभावों को जिस सुन्दर ढंग से वर्णन करते हैं वह पढ़ते ही बनता है । ... लेखक ने स्थान स्थान पर अपनी तर्कशक्ति का कितना अच्छा परिचय दिया है । विश्वविद्यालयों और कालेजों के विद्यार्थी इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें ।

—प्रताप, १३ जुलाई १९२५ ।

originality of thought and clearness of views (विचार की मौलिकता और विरादता ...) ।

—वैदिक मैगजीन फरवरी १९२७ ।

विचारशील लेखक की गाढ़ी मेहनत और गहरे विचार की छाप ... । ... मौलिक विचारों की एक नई परम्परा ... । भारतीय इतिहास ... के साहित्य में एक बिलकुल नई चीज ... । पिछले डेढ़ सौ वर्षों में ... किसी ने अभी तक भारतीय इतिहास की भौगोलिक भित्ति का शृंगलावद्ध अनुशीलन नहीं किया था । ... माया अपने ढंग की रोचक और सजीव है ।

—सरस्वती, सितम्बर १९२६ ।

utilized the researches by various scholars up to date, and has added his own contribution which are important. Such a synthetic work had not been attempted before. The book is in Hindi. This will stand in the way of the author's results reaching foreign scholars.

The learned author's method is perfectly correct, and his judgement logical.

The work deserves to be translated into English.

Patna 21 July 1931 K. P. Jaisankar

(मैंने श्रीयुग जयचन्द्र विद्यालंकार की भारतीय इतिहास की रूपरेखा (प्राचीन काल) को पूरी तरह देखा था। यह एक अद्वितीय कृति है। वैदिक काल से लेकर गुप्त युग के अन्त तक भारतीय इतिहास की राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक-विवरण, सभी परलुप्तों से विवेचना की गई है। लेखक ने विभिन्न विद्वानों की अनेक तथ्यों को स्रोतों का उपयोग किया है, और इनसे अपनी नई स्रोतों, जो महत्वपूर्ण हैं, जोड़ी है। इस प्रकार का समन्वयपूर्ण ग्रन्थ लिखने की अनेक तथ्यों दिमी ने चेष्टा न की थी। पुस्तक हिन्दी में है। इस कारण संस्कृत के पण्डित विदेशी विद्वानों तक पहुँचने में बाधा होगी।

विद्वान् संस्कृत की सीधी पूरी तरह व्याख्यानम् है, और विद्यालंकार महामान्य।

इस ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद होना चाहिए।

सन् १९३१ जुलाई २१/३१। (का० प्र० जयमवाल।)

